

# Namak Swadanusar (Hindi)

Nikhil Sachan

नमक स्वादानुसार

निखिल सचान



**ISBN:** 978-93-81394-50-2

**प्रकाशक:**

हिन्द-युगम

1, जिया सराय, हौज खास, नई दिल्ली-110016

मो.- 9873734046, 9968755908

**कला-निर्देशन:** विजेंद्र एस विज | [www.vijendrasvij.com](http://www.vijendrasvij.com)

**पहला संस्करण: अगस्त 2013**

पहली आवृत्ति: फरवरी 2014

दूसरी आवृत्ति: नवम्बर 2014

तीसरी आवृत्ति: जून 2015

**चौथी आवृत्ति: दिसम्बर 2015**

© निखिल सचान

Namak Swadanusar

(A collection of stories by Nikhil Sachan)

[nikhil.sachan1986@gmail.com](mailto:nikhil.sachan1986@gmail.com)

Published By

Hind Yugm

1, Jia Sarai, Hauz Khas, New Delhi- 110016

Mob: 9873734046, 9968755908

Email: [sampadak@hindyugm.com](mailto:sampadak@hindyugm.com)

Website: [www.hindyugm.com](http://www.hindyugm.com)

**First Edition: Aug 2013**

First Reprint: Feb 2014

Second Reprint: Nov 2014

Third Reprint: June 2015

**Fourth Reprint: Dec 2015**

माँ, पापा, दीदी और शुभांगी के लिए

## बात की बात

‘नमक स्वादानुसार’ मेरी पहली किताब है। इसकी कहानियाँ ज़हन में उसी तरह आई हैं, जिस तरह देह को बुखार आता है। ये पन्नों पर जैसे-जैसे उतरती गई, बुखार भी उतरता रहा। ये कहानियाँ ‘बस हो गयी’ हैं, और अब आपके सामने हैं। इसमें से एक-एक कहानी को मैंने सालों-साल, अपने दिमाग के एक कोने में, तंदूर पर चढ़ाकर, धीमी आँच पर बड़ी तबियत से पकाया है क्योंकि मैं कहानियों के मामले में निहायती-लालची इंसान हूँ।

ये कहानियाँ मुझे उत्साहित भी करती हैं और नर्वस भी। उत्साहित इसलिए, क्योंकि एक किताब के रूप में ढलकर ये कहानियाँ वैसे ही ‘मुकम्मल’ हो जाएँगी, जैसे अंडों से निकलकर चूजे ‘मुकम्मल’ हो जाते हैं। इन कहानियों के पास पंख तो थे, लेकिन परवाज़ को बुलंद होने के लिए नीले शामियाने की ज़रूरत हुआ करती है।

नर्वस इसलिए कह लीजिए क्योंकि आज की तारीख में ‘लिटरेचर’ और ‘इंटरटेनमेंट’ के बीच का फ़र्क बस धागे भर का रह गया है। अब अगर ये कहूँ कि मैं लोगों की प्रतिक्रिया से परे हूँ तो मेरी बात में एक चुटकी झूठ झाँकता मिलेगा।

इस किताब के लिए मुझे कुछ खास लोगों का शुक्रिया भी अदा करना है, जिनके बगैर ये किताब, ‘किताब’ की शक्ल नहीं ले पाती। शुभांगी ने हमेशा मेरी कल्पना में और मुझमें, गाहे-बगाहे, चटकीले रंग भरे हैं। अगर मेरी कहानियाँ पढ़ कर उसे खुशी होती थी, तो मैं समझ लेता था कि मेरी क़लम को, उसकी नीली पीठ पर, हौले से शाबाशी महसूस हुई होगी। संजू दादा हमेशा मेरी लिखावट के लिए बहुत बड़ी ताक़त रहे हैं। वो जब भी कहते थे कि ‘निखिल मेरा फ़ेवरेट ऑथर है’, तो मेरी छाती गुब्बारे-सी फूल जाती थी।

मेरे अज़ीज़ दोस्त- वैभव, सुमित, पुष्पेंद्र, आदर्श, मृदुल और मनुज ने बिना नागा किए, लगभग मेरी सारी कहानियाँ पढ़कर उन पर नुक्ताचीनी की है और मेरा हौसला बढ़ाया है। सुमन दा को भी शुक्रिया कहना चाहता हूँ क्योंकि अगर मैं उनसे नहीं मिला होता तो शायद कहानियों, नाटक और फ़िल्मों को उस नज़रिए, तड़प और बारीकी से नहीं देख पाता जैसे आज देखता हूँ।

माँ, पापा और दीदी का शुक्रिया! क्योंकि मैं जो भी हूँ, मेरे एक-एक ज़र्रे के होने-न-होने की बहुत बड़ी वजह वही हैं।

आख़िर में आप सभी का शुक्रिया, जो इस किताब को अपने घर तक ले आए। उम्मीद करता हूँ कि यह किताब आपकी ज़िंदगी में, कुछ देर को ही सही, सोंधा-सा छौंका ज़रूर लगा देगी।

कुछ कम-ज़्यादा हो जाए तो, नमक स्वादानुसार आप खुद ही मिला लीजिएगा।

(आख़िर में अपनी तरफ़ से एक छोटा-सा डिस्क्लेमर भी कहता चलूँ। इस संकलन के सभी

पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं। इसमें से एक कहानी, सुहागरात- 'उर्फ़ प्रोफ़ेसर' नाम की फ़िल्म से हल्की-फुल्की प्रभावित कही जा सकती है, और टोपाज़ का आइडिया सुमित सक्सेना की शॉर्ट फिल्म 'गुड्डू' से उपजा है।)

**निखिल सचान**

## पता-ठिकाना

परवाज़

हीरो

मुग़ालते

पीली पेंसिल

टोपाज़

साफ़े वाला साफ़ा लाया

सुहागरात

विद्रोह

बाजरे का रोटला, टट्टी और गन्ने की ढ़ूँठ

## परवाज़

### अजूबा, गया प्रसाद और सुपर कमांडो ध्रुव

नानू के लिए ये वाला संडे अच्छा भी गया था और बुरा भी। बुरा इस लिहाज़ से कह लीजिए, कि अजूबा, नानू की जगह, सुबू से मिलने आया था। अजूबा! बहारिस्तान का रखवाला! 'खुदा गवाह' फ़िल्म वाला अजूबा! वैसे तो, सुबू, नानू का सबसे अच्छा दोस्त था, लेकिन ये बात नानू की समझ से बाहर थी कि अजूबा उससे मिलने क्यों नहीं आया?

सुबू ने बताया कि अजूबा काले कपड़े में सफ़ेद घोड़े पर आया था। सुबू की तो साँस ही अटक गयी थी। फिर भी सुबू डरा नहीं और दोनों की बातचीत हुई।

दोनों पहाड़ी पर गए और सुबू ने अजूबा को किला दिखाया। स्कूल भी दिखाया। उसने वो घर भी दिखाया जो नानू और सुबू ने चितकबरे पिल्ले के लिए बनाया था। नानू को इस बात से रोमांच भी हुआ कि अजूबा उसका बनाया हुआ घर देख कर खुश हुआ होगा, लेकिन कहीं-न-कहीं उसको ये भी लग रहा था कि सुबू ने अजूबा को ये बात बताई भी होगी या नहीं, कि टाट और मिट्टी से मज़बूत घर बनाने की तरकीब नानू ने ही भिड़ाई थी। अगर उसने ऐसा बताया होता तो शायद कभी अजूबा उससे भी मिलने आ जाता। अजूबा भी कमज़ोरों का दोस्त था और नानू भी। उसे भी जानवर पसंद थे और अजूबा को भी। जैसे अजूबा घोड़े को अपना भाई बोलता था, वैसे ही नानू चितकबरे पिल्ले को अपना भाई कहता था।

सुबू ने अजूबा को बबूल का वो पेड़ भी दिखाया जिस पर पेशाब करने से गया प्रसाद को जिन्न चढ़ गया था। सुबू ने अजूबा को बताया कि उस दिन के बाद से गया प्रसाद रोज़ाना अपने दरवाज़े से, बबूल के पेड़ तक, लोटते-लोटते जाता है और जिन्न के सामने उठक-बैठक करता है। उसकी ज़िंदगी इस क्रम के गोल-चक्कर में फँस गई है और वो गोल चक्कर तभी टूटेगा जब बारिश से बबूल के पेड़ का एक-एक काँटा धुल कर फिर से साफ़ हो जाएगा।

लेकिन इधर बीच तीन महीने से बारिश नहीं हुई थी और बादलों का मिजाज़ भी कुछ ठीक नहीं लग रहा था।

सबकुछ अच्छा चल रहा था कि अचानक सुबू की बचकानी बातों से अजूबा की हँसी छूट गई। सुबू का माथा ठनक गया। ठनकने वाली बात थी भी।

गया प्रसाद वाली बात सुबू और नानू के सिवा किसी और को पता नहीं थी। एक तो सुबू ने भरोसा करके, बिना 'बाई-गॉड' की कसम खिलाए, अजूबा को इतनी खूफ़िया बात बताई और अजूबा उसकी बात को 'लंतरानी' समझ कर हँसने लगा। दोनों के बीच बहुत लड़ाई हुई, कभी ये भारी तो कभी वो भारी। ऐसा लगता था कि इस बात का नतीजा निकलेगा ही नहीं कि



आखिरकार दोनों में से कौन जीतेगा। अगर नानू ने सुबू को अजूबा की कमज़ोरी न बताई होती तो सुबू अजूबा से जीत ही नहीं सकता था।

सुबू ने मौका देखकर, अजूबा के कंचों पर फैट मारा और अजूबा उठ नहीं पाया।

नानू, एक तो इस बात से दुखी था कि अजूबा उसके बताए राज़ की वजह से हार गया और दूसरा इस बात से दुखी था कि अजूबा उससे मिलने नहीं आया। ख़ैर, ये बात दुखी होने वाली थी तो, लेकिन इसके अलावा कुछ अच्छी बातें भी तो हुई थीं, जिनके लिए खुश भी हुआ जा सकता था

मसलन:

-नानू ने रेल की पटरी पर जो सिक्का रखा था, वो चुंबक बन गया था।

नानू का, खुद का बनाया हुआ चुंबक।

-चितकबरा पिल्ला, जो परसों ईट और टाट के बनाए घर से भाग गया था, वो आज वापस लौट आया था और आते ही नानू के पैर चाटने लगा था। माँ ने सुबह ही उसको डाँटा था कि उसके पैर जंगलियों की तरह हो गए हैं- “नहा ले”। फिर भी चितकबरा पिल्ला उसके गंदे पैर चाट रहा था। उसकी आँखों से रोमांच के आँसू गिरे थे। ये कहना मुश्किल है कि आँसू रोमांच के थे, या ममता के या फिर खुशी के। उँगली पर रखकर क़रीब से देखा जाता, तो शायद अंदाज़ा होता कि उसमें नमक के अलावा मिठास किस बात की थी।

-गणित की किताब के पन्नों के बीच में उसने जो पंख दबाया था, उसने एक बच्चा दिया था। एक बड़े पंख से तीन छोटे-छोटे पंख निकले थे। नानू का जी करता था कि वो यही सारे पंख अपने बाजू में बाँधकर उड़ जाए और सारी दुनिया को बता दे कि पन्नों के बीच में पंख दबाने से, बच्चे निकलने वाली बात, झूठी नहीं है। जब वो उड़ता, तो उसे मूर्ख समझने वाले लोग, मुँह बाए, उसकी उड़ान को ऐसे देखते रह जाते, जैसे नागराज की कलाई से साँप निकलता देख कर सबका मुँह खुला-का-खुला रह जाता है।

-ध्रुव की कॉमिक्स ‘खूनी खिलौना’ रिलीज़ हुई थी और तौसी की रानी ने उसके बेटे ‘टनी’ को जन्म दिया था। नानू इतना खुश हुआ, जैसे उसका छोटा भाई जन्मा हो। अपनी नीली पैंट और पीली बुशर्ट पहन कर वो घंटों दौड़-भाग करता रहा। अपनी बहन को ‘बौना-वामन’ बना कर, उसने घंटों उधम मचाया। पहले तो छुटकी बौना वामन बनने के लिए तैयार नहीं हो रही थे, लेकिन जब बदले में ये तय हुआ, कि अगली बार छुटकी ध्रुव बनेगी और नानू ‘ग्रैंड मास्टर रोबो’ बनकर मार खाएगा, तो वो झट से बौना वामन बनने के लिए तैयार हो गई।

लेकिन, अजूबा उससे मिलने क्यों नहीं आया?

अजूबा का सबसे अच्छा दोस्त तो नानू ही था। और सुबू तो इतना गधा था, कि उसको अभी तक ये भी नहीं पता था, कि अली और अजूबा एक ही इंसान निकलेंगे। जबकि नानू ने पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी, कि अली और बहारिस्तान का मसीहा अजूबा एक ही इंसान हैं।

## चुंबक, स्कोर कार्ड और महेश मोटा

नानू आज पूरी तैयारी से स्कूल आया था। उसे अजूबा का बदला सुबू से निकालना था। इससे पहले कि सुबू उसको अजूबा और अपनी फ़ाइट की कहानी में एक चुटकी झूठ और दो चुटकी नमक, स्वादानुसार मिलाकर सुनाता, नानू ने उसे अपना चुंबक दिखाया।

“अबे ये क्या है?”

“फट गई! चुंबक है साले।”

“कहाँ से पाया बे?”

“मैंने खुद बनाया है। ट्रेन की पटरी पर सिक्का रखकर।”

“क्या बात कर रहा है नानू, ट्रेन से चुंबक कैसे बनता है? गोली बाँध रहा है साले!”

“गोली तो तू बाँधता है साले, मैं नहीं मानता कि अजूबा तेरे से मिलने आया था। बता ज़रा कि बहारिस्तान का सबसे बड़ा शैतान कौन है?”

“अबे तू बुरा मत मान दोस्त। चुंबक से क्या-क्या कर सकते हैं?”

“अबे साइकल, मटकी, लड़की, कुछ भी खींच सकते हैं इससे। फ़रिश्ते मूवी में नहीं देखा था? उसमें धर्मेन्द्र और विनोद खन्ना चुंबक से कितना मचाते हैं!”

“अबे सही बे!”

“सुन बे! तू मेरा दोस्त है, इसलिए तुझे एक खास बात बताता हूँ। अगर इस चुंबक का एक टुकड़ा, दूसरे हिस्से से अलग भी कर दोगे, तो भी मरने से पहले दोनों कहीं से भी एक-दूसरे को खोज के चिपक जाएँगे।”

सुबू का चेहरा आश्चर्य से एक इंच चौड़ा हो गया, भौंहे कानों तक तन गई और वो वही हरकत करने लगा जो वो अक्सर हैरानियत में करता था। थूँक गटकते हुए उसने पूछा-

“वैसे ही जैसे इच्छाधारी नागिन मरने से पहले अपने नाग को खोज लेती है?”

“हाँ-हाँ! वैसे ही, सेम कांसेप्ट नहीं है लेकिन हाँ, काफ़ी कुछ वैसे ही।”

अजूबा को हराने के बावजूद भी सुबू नानू से पिछड़ता जा रहा था। इस बार उसने थूँक नहीं गटका। चेहरे पर अथॉरिटी और रहस्य का मिश्रण लेप कर भारी आवाज में बोला- “भाई, एक बात मैं भी बता रहा हूँ प्लीज़ किसी और को मत बताइयो। बाई-गॉड की क़सम खा पहले।”

नानू ने चालाकी से ‘बाई-गॉड’ की जगह ‘बाई-गोट’ की क़सम बोल दिया। वो हमेशा ही ये चालाकी करता था। आज वो एक बालिशत भी ये गुंजाइश नहीं छोड़ना चाहता था, कि सुबू उससे ज़्यादा कलाकार लौंडा साबित हो जाए। प्लानिंग सही काम कर रही थी। मास्टर प्लान परत-दर-परत अपना असर दिखा भी रहा था। उसने सुबह ही ध्यान से चुंबक अपने बस्ते में डाल लिया था, ताकि स्कूल पहुँचते ही स्कोर-कार्ड 1-0 से, 1-1 हो जाए। चुंबक ने अपना असर दिखाया

भी और वो ये बात देख भी सकता था।

सुबू का चेहरा उतर गया था। नानू उसे एक ज़माने से जानता था। सुबू जब भी निरुत्तर होता था तो वो गाँड़ खुजाने लगता था। नानू ने चेक किया, उसकी उँगलिया खाकी पैट खुरच रही थीं।

“हाँ बता, क्या बात है?”

“अबे अगर नाग-पंचमी के दिन किसी को साँप काट ले तो वो भी इच्छाधारी साँप बन जाता है!”

नानू एक मिनट के लिए सुबू को अवाक् देखता रह गया। क्योंकि क्रायदे से बात थी तो सही। लॉजिक भी था। लेकिन आज बात मानने का दिन था ही नहीं। उसने विरोध करते हुए कहा-

“अबे इच्छाधारी साँप होने में ऐसा भी क्या भोकाल है बे! दुनिया का सबसे बड़ा इच्छाधारी साँप नागराज है और वो ध्रुव से हार जाता है।”

“घंटा! ऐसे तो मैं भी कह सकता हूँ कि परमाणु से बड़ा तेज़ कोई नहीं है। अबे हर हीरो की अलग ताक़त है। आज तू हर बात पर मत भिड़ मुझसे।”

अब ये ऐसा नाज़ुक मौक़ा था जहाँ पर नानू को रोक पाना मुश्किल था। वो कॉमिक्स खाता था और कॉमिक्स ही पीता था। परमाणु जैसे हीरो का नाम ध्रुव और नागराज के साथ लेना एक ऐसा अपराध था जिसके लिए क्षमा नहीं बनी थी। गुस्से से नानू की टोटी खुल गई। नानू अपनी बात आगे बढ़ाता हुआ बोला-

“परमाणु! अबे तू पागल है क्या! परमाणु से झाँटू हीरो कोई नहीं है। वो फ़र्ज़ी है एकदम। परमाणु के पास एक ही तो ताक़त है, और वो है परमाणु बम। जिसे वो भी कभी छोड़ नहीं सकता। फट्टू साला। छोड़ेगा तो सबसे पहले खुद ही मरेगा। तू मुझसे एकदम फ़ालतू की बात मत किया कर।”

सुबू चुप हो गया क्योंकि एक बार फिर, बात निराधार नहीं थी। लॉजिक था। सॉलिड। कभी-कभी सुबू हैरान हो जाता था कि नानू इतना सब कुछ कैसे जानता है? फिर भी सुबू अब हत्थे से उखड़ चुका था क्योंकि नानू उसका हर एक तर्क बेदर्दी से काट दे रहा था। सुबू बोला-

“तू चूतिया है।”

“अबे तू चूतिया है।”- नानू ने कहा

“तू महा-चूतिया है।”- सुबू ने कहा

“अबे तू महा-महा चूतिया है।”- नानू ने कहा

“तू महा-महा-महा-महा चूतिया है।”- सुबू ने कहा

“मैं जितने बार चूतिया हूँ, तू उससे एक बार ज़्यादा चूतिया है। अब जितने बार महा-महा करना हो कर ले। तू अपने आप उससे एक बार ज़्यादा चूतिया हो जाएगा।”- नानू ने कहा

नानू ऐसा दाँव खेल चुका था जिसके आगे तर्क या कु-तर्क की गुंजाइश ही नहीं थी। लड़कपने में, मैं भी तमाम-बार ऐसे मोड़ पर फँस कर निरुत्तर हो चुका हूँ। दरअसल इसे 'डेड एंड' कहते हैं। क्योंकि इसके आगे कोई तरीका काम नहीं करता और सामने वाले को हार मान लेनी पड़ती है। सिर्फ़ एक दाँव है, जो ऐसे में वही काम करता है, जो धोबीपछाड़ करता है। उतना ही असरदार।

सुबू ने वही दाँव खेल लिया- "जो पहले बोलता है, वही होता है।"

ये क्या! दाँव सिरे से उल्टा पड़ चुका था। स्कोर कार्ड फिर से 2-1 हो गया। नानू का चेहरा उतर गया और वो रोने लगा। सुबू ये बात पढ़ सकता था। उसने उसे सॉरी बोलने में ही समझदारी समझी। लेकिन ऐसे में सॉरी भी काम नहीं कर रहा था और तब सुबू को वो करना पड़ा जो वो बिल्कुल भी नहीं करना चाहता था। सुबू बोला- "अच्छा सुन, कल कोई अजूबा-वजूबा मुझसे मिलने नहीं आया था।"

सफ़ेद झंडे बाहर निकाल लिए गए और लड़ाई खत्म कर दी गई।

नानू ने सुबू को अपना चुंबक खेलने के लिए दे दिया और तभी गणित के टीचर महेश जी क्लास में दाखिल हुए। महेश जी डील-डौल में जितने मज़ेदार प्राणी थे, स्वभाव से उतने ही खूँखार। जलवा ये था कि वे मात्र छींक दें तो लड़के मूत देते थे। महेश जी ने आते ही बोर्ड पर एक सवाल लिख दिया। उनकी चॉक से सवाल छूटने का मतलब ही यही हुआ करता था कि लड़के उसे हल करना शुरू कर दें। और वो सवाल लिखने के बाद अपने पेट पर हाथ फिराने में खुद को व्यस्त कर लेते थे।

इधर नानू और सुबू फिर से हुई दोस्ती की खुमारी में मगन थे। वापस मिली दोस्ती पुरानी दोस्ती से ज़्यादा मीठी होती है। सुबू ने नानू के गलबहियाँ डाल कर कहा- "दोस्त बाई-गॉड की क़सम खा तो एक बात बताऊँ।"

"अच्छा छोड़, मत खा, ऐसे ही बता देता हूँ, तू मेरा पक्का दोस्त है।"

"एक बार इस हाथी ने अपने बच्चे को कंटाप मार दिया। उसका कान फट गया और वो उसके बाद से आज तक बहरा है।"

"चल साले, क्या सच में?"

"और नहीं तो क्या, मैं क्या भाई से झूठ बोलूँगा?"

"मुझे तो लग रहा है कि तू झूठ बोल रहा है। क्योंकि इसका न तो कोई लड़का है और न ही इसका कोई लड़का हो सकता है। मुझे सीटू भैया ने बताया था कि गले लगा कर होंठ पर 'किस' करने से बच्चा होता है। इसके और इसकी बीबी के मोटापे को देखकर तुझे लगता नहीं है कि दोनों का पेट लड़ जाता होगा?"

ये एक ऐसी लाइन थी जिसपर सुबू की टोंटी खुल गई और वो चिर-काल के लिए हँसना शुरू हो गया। नानू को पता था कि जब सुबू हँसना शुरू हो जाता है तो उसको रोकना लगभग

असंभव हो जाता है। मुंडी नीचे झुका के वो बस यही मना रहा था कि महेश जी उन दोनों को न देख पाएँ। नानू ने सुबू को जाँघ पर चिकोटी भी काटी कि वो चिहुँक उठे और शायद हँसना बंद कर दे। लेकिन जिसका डर था, वही हुआ।

दोनों की पेशी लगा दी गई।

महेश जी का दंड देने का अंदाज़ भी निराला था। अगर अपराध छोटा हो तो फ़र्स्ट डिग्री, जिसके तहत चॉक से बनाए हुए गोले को नाक से रगड़ कर मिटाना होता था। दूसरी डिग्री के तहत ऐसे चार गोलों का नाम-ओ-निशॉ मिटाना होता था और अगर छटॉक भर भी चॉक छूट गई तो थर्ड डिग्री। जिसमें पूरे ब्लैक-बोर्ड की सफाई डस्टर की जगह नाक से करनी पड़ती थी।

दोनों को थर्ड डिग्री मिली।

क्लास के सारे बच्चों में भाईचारे की लहर दौड़ गई। पिटने वाले भाई-भाई और बचने वाले उससे भी ज़्यादा भाई-भाई। एक-एक अक्षर मिटाते हुए दोनों यही सोच रहे थे कि ऐसा क्या किया जाए कि मोटे को ठीक बरगद के पेड़ के पास मुतास लगे और मूत की आखिरी बूँद छिटकते ही उसके शरीर से जिन्न चिपक जाए। दोनों को बोर्ड पर लिखा हुआ सारा कुछ, अगले दिन पचास बार कॉपी पर लिखने का दंड दिया गया। बुझे मन, बोझिल पाँव और चमकती नाक लेकर दोनों अपने-अपने घर की ओर रवाना हुए।

## मान-न-मान मैं-तेरा-भगवान

लड़कपन का मानना-न-मानना भी अजीब होता है। मानो तो भूत-प्रेत असली, न मानो तो देवता भी नकली। पत्थर की मूरत, बेजान-सी सूरत। दिल लग जाए तो माटी में भी स्वाद, न लगे तो दाल-भात बे-स्वाद। नानू रात भर से काँख में प्याज की गुलथी दबा के लेटा हुआ था। उसका 'मानना' ये था कि ऐसा करने से प्याज की गर्मी काँख से गुज़र कर माथे पर चढ़ जाती है और बुखार नहीं तो हाररत, ज़रूर हो जाती है। दोनों ने तय किया था कि रात भर प्याज दबा कर सोएँगे। सुबह जब माँ उठाने आएगी तो खुद ही स्कूल जाने के लिए मना कर देगी।

सुबह जब माँ उठाने आई तो नानू ने भारी आवाज़ में जवाब दिया कि आज तबियत कुछ ठीक नहीं है। माँ ने माथा छुआ तो मामला चमाचम ही नज़र आया। माँ से बहस करना बेकार था, पता था कि जाना ही पड़ेगा। बचपन में माँ का कहा पत्थर की लकीर नहीं, खुद पत्थर ही होता है और ज़िक्र नानू की माँ का हो तो- उसका कहा हुआ हर एक लवज़ चट्टान होता था।

कुछ भी तो अच्छा नहीं हो रहा था। अजूबा-तो-अजूबा, मुआ प्याज भी धोखा दे गया। नानू बेमन से, स्कूल जाने की तैयारी में, बटन से बुशर्ट का एक पल्ला दूसरे पल्ले में टाँक रहा था, तभी खिड़की पर सुबू ने सिग्नल दिया।

“हैं-चू-हैं-चू।”

“भौं-भौं।”

“हैं-चू हैं-चू।”

नानू समझ गया कि सुबू ही आया है। गधे और कुत्ते की आल्टरनेट आवाज़ उससे घटिया तरीके से निकालने वाला आज तक पैदा नहीं हुआ था। खिड़की में से एक अंडाकार मुंडी धीरे-धीरे नुमायाँ हुई, तो वही था। सुबू ने पूछा- “प्याज ने काम किया?”

जवाब में नानू का बिना छिलके के प्याज जैसा मुँह देखकर वो समझ गया कि कुछ नहीं हो पाया। दोनों झोला लेकर स्कूल के लिए निकल पड़े।

“अबे नानू, मेरी नाक देख। एकदम तोते जैसी हो गई है। कल मेरी अम्मा ने पूछा कि ये क्या हो गया, तो मुझे कहना पड़ा कि सवाल लगाते-लगाते झपकी आ गई थी तो नाक सीधे मेज़ से टकरा गई। अम्मा ने डाँटा कि ज़्यादा पढ़ाई मत किया कर। लेकिन क़सम से इतनी घिसाई तो कारखाने में बापू भी नहीं करता होगा।”

“भाई, मैं क्या सोच रहा हूँ पता है?”

“क्या?”

“अगर आज भी घिसाई करनी पड़ी तो नाक की जगह खाली नथुने बचेंगे।”

नानू की बात पर सुबू की हँसी छूट गई- “अबे यार तेरी यही बात तो मुझे अच्छी लगती है, कितनी भी लगी पड़ी हो, तू गज़ब हँसाता है।”

“साले तुझे हँसने की पड़ी है? मैं हँसा रहा हूँ? मैं आज स्कूल नहीं जाने वाला, नाक की जगह नथुने लेकर तुझे घूमना हो तो घूम।”

“यार स्कूल तो मुझे भी नहीं जाना। किसी तरह आज बच जाएँ तो फिर महेश मोटे का मुँह सीधे सोमवार को देखना पड़ेगा। भाई बचा ले न यार।”

दोनों मास्टर-प्लान बनाने बैठ गए। सुबू आज फिर नर्वस था, सो खुजली ज़ारी थी। नानू यहाँ-वहाँ पेंडुलम की तरह घूम रहा था। सुबू उसे प्रोत्साहन की नज़रों से ऐसे देख रहा था कि नानू जो भी कर रहा है, शायद वो इस सारे क्रिया-करम और प्रोपोगैंडा के बाद, हर बार की तरह चिल्ला पड़े- ‘आइडिया!’। लेकिन इस बार आइडिया नहीं निकला, तय किया गया कि स्कूल के बजाय मंदिर चला जाए। दोनों भगवान के सामने हाथ जोड़कर और आँखें बंद करके खड़े हो गए। बीच-बीच में आँखें खाली ये देखने के लिए खुलती थीं कि बग़ल वाला भी झंडा बुलंद किए खड़ा है या दूसरे को देख कर हँस रहा है।

लेकिन दोनों ही सच्चे भक्त की तरह हाथ जोड़े खड़े थे।

हिंदुस्तान में आस्था से ज़्यादा मज़ेदार चीज़ सिर्फ़ भगवान ही है। हिंदुस्तान में आस्था झटके में डोलती है, और भटके तो बोलती है। और बच्चों की आस्था इतनी मासूम हुआ करती है कि खुदा खुद भक्त बन जाए। दोनों मन में प्रार्थनाएँ पढ़ रहे थे। क्योंकि उनका मानना था कि अगर कोई प्रार्थना सुन लेता है तो वो पूरी नहीं हो सकती:

“हे भगवान! मैं एक अच्छा लड़का बन के दिखाऊँगा। मुझे बस एक बार ‘गणित के मास्टर ‘जी’ से बचा लो।”

“हे भगवान! मैं कभी उसे मोटा भी नहीं कहूँगा। ‘उन्हें’ मोटा नहीं कहूँगा।” (सुबू ने जल्द ही करेक्शन किया)

“मैं माँ का सारा कहना मानूँगा।”

“कभी गमले में दूध का गिलास नहीं बहाऊँगा।”

“अगली बार से अपनी बहन को बेवकूफ़ नहीं बनाऊँगा। और जब उसका टर्न होगा तो उसे फिर से ‘बौना-वामन’ नहीं बनाऊँगा। वो ध्रुव बनेगी और मैं मार भी खा लूँगा।”

“अगली बार से हमेशा स्कूल का काम पूरा रखूँगा।”

“कॉमिक्स पढ़ना छोड़ दूँगा।”

नानू ने आँखें खोल ली। भावनाओं में बहकर वो शायद थोड़ा ज़्यादा बोल गया था। ‘नेगोशिएशन’ ज़रूरी था।

“ज़्यादा कॉमिक्स नहीं पढ़ूँगा।”

दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा, आम-सहमति के हिसाब से तय किया गया कि भगवान को दो रुपये भी चढ़ाया जाएगा। सुबू के पास पचास पैसे के तीन सिक्के थे और नानू के पास एक। दोनों ने उसे मूर्ति के पीछे रख दिया ताकि भगवान के अलावा उसे कोई और न ले सके। यह निर्णय लेने के लिए जिगरे, कलेजे और हिम्मत तीनों की ज़रूरत थी। तीनों लगाए गए, और दोनों दोस्त एक आस्था लेकर मंदिर से अपने-अपने घर रवाना हो गए।

## **जादूगर शंकर, स्किन कलर की पैजामी, और आबरा-का-डाबरा**

सुबह-सुबह आज फिर खिड़की पर सिग्नलिंग चल रही थी। सिग्नलिंग का पैटर्न बाक्रायदे फ़िक्स था। वही आल्टरनेट हैं-चू, भौं-भौं और उसके पश्चात काँच की खिड़की से एक अंडाकार आकृति का नुमायाँ होना। पर पैटर्न में आज उत्सुकता कुछ एक-दो चम्मच ज़्यादा थी। हैं-चू और भौं-भौं आज सुनने में ऐसे लग रहे थे, जैसे सावन का गदहा रेंक रहा हो और बारिश के मौसम का चुदासा कुत्ता किकिया रहा हो। नानू के खिड़की पर आते ही सुबू ने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया-

“दूसरी दुनिया में स्वागत है!”

“मात्र पचास पैसे में!”

“अचंभे की दुनिया में!”

“मात्र पचास पैसे में!”

“पारलौकिक शक्तियों की दुनिया में।”

“मात्र पचास पैसे में!”

“मात्र पचास पैसे में!”

“भरम और रहम की दुनिया में!”

“मात्र पचास पैसे में!”

“जादूगर शंकर की दुनिया में, आपका स्वा ...”

नानू ने अँगूठे से ठेपी लगाकर, सुबू की ज़बान, जाम कर दी। पूछा- “साले बावरे, क्या हो गया?”

“आन्हू-आन्हू...जादू की दुनिया में...आन्हू आन्हू!”

“अरे बावरे, कौन, कैसा जादू?”

“आन्हू आन्हू...आन्हू आन्हू!”

“अबे साले बता न, ये बंदर-चाल बाद में कर लेना!”

“भाई मेरे, आज संडे है फिर कल, परसों, तरसों, थरसों छुट्टी। महेश मोटे को भूल जा। क़सबे में जादूगर शंकर आया हुआ है, जादू देखने चलते हैं।”

नानू की आँखें अँधेरे की बिल्ली की तरह चमक रही थीं। छोटे बच्चों की आँखों की भंगिमाएँ संक्रामक होती हैं। दोनों एक-दूसरे को देख रहे थे तो चमक एक की आँखों से दूसरे की आँखों तक फुदक आती थी। ‘ट्रिंकल ट्रिंकल लिटिल स्टार’ का ‘हाउ आई वंडर व्हाट यू आर’ उन्हीं आँखों में छिटक-छिटक कर तुकबंदी बिठा रहा था। महेश मोटा हार गया था, जादू की दुनिया जीत रही थी। दोनों बनच्चर उछल-उछल कर गा रहे थे- “आज की रात सनम डेंस करेंगे..डेंस करेंगे..रोमेंस करेंगे..”

“ओ-हो, आज की रात सनम...”

लेकिन अचानक सुबू ने नानू के डेंस पर लँगड़ मारा। कुछ सोच के उसका मुँह समोसे जैसा हो गया था- “बड़े भाई! जादू देखने के लिए पैसे कहाँ से लाएँगे? जो कुछ था वो सब तो मंदिर में रखवा दिया तूने।”

छोटे बच्चों की आँखों की भंगिमाएँ संक्रामक होती हैं। एक और समोसा छन गया। डेंस रुक गया। रोमेंस रुक गया।

“चल मंदिर।”

“मंदिर?”- सुबू ने पूछा।

“हाँ मंदिर।”



जैसा कि मैंने पहले भी कहा- हिंदुस्तान में आस्था से मज़ेदार सिर्फ़ भगवान ही होता है। नानू ने सुबू को समझाया कि भगवान को पैसे से कोई मतलब-वतलब नहीं होता। चल कर देखा जाए, अगर भगवान ने पैसा ले लिया होगा तो कोई बात ही नहीं। अगर नहीं लिया होगा तो उसका यही अर्थ है कि उसे पचास पैसा नहीं चाहिए।

गलियाँ सरपट काटते हुए, बड़ी साँसों से छोटी साँसें छाँटते हुए, दोनों क्षण भर में मंदिर पहुँच गए।

दिल ज़ोर का धड़कता था। आज प्रश्न भगवान के लालच पर उठा था।

पचास पैसे के सिक्के वहीं रखे थे, क्योंकि कमबख्तों ने सिक्के ऐसी जगह छुपाए थे कि पुजारी क्या भगवान भी नहीं खोज पाते। दोनों ने सिक्के उठाए, दौड़ना शुरू किया और अगले आधे घंटे में दोनों पंडाल के अंदर थे।

ज़्यादा देर नहीं हुई थी। अभी-अभी जादूगर शंकर ने लकड़ी की छड़ी को खड़ा करके उसकी नोक पर एक लड़की को ऐसे सुलाया था मानो माँ ने लोरी गा के सुला दिया हो। सुबू और नानू को साँप सूँघ गया, पूरे पंडाल को काटो तो खून नहीं। जनता को लगा कि इसके बदले में इतनी तालियाँ पीट दें कि हथेलियों पर गुलाबी रंग का उबाल आ जाए। जादूगर ने मुस्कुराते हुए कहा- “दाद चाहूँगा” और उसके जवाब में तालियों की गड़गड़ाहट से जादूगर को लाद दिया गया। बदले में जादूगर ने भी ऐलान किया- “अब मैं आप लोगों को दिखाऊँगा जादूगर शंकर का इंद्रजाल, जिसमें जादूगर शंकर खुद को तीन हिस्सों में बाँट लेता है।”

एक काले रंग का पर्दा लाया गया, चमड़ी के रंग की चुस्त पैजामियाँ पहने दो औरतें जादूगर के सामने तैनात हो गईं। परदे के पीछे से जादूगर के बुदबुदाने की आवाज़ तेज़ हो रही थी। बिल्कुल वैसे ही जैसे पतीले से उबल कर गिरने से पहले दूध बुदबुदाता है-

“नंग-धड़ंगे सच आया, न बुशर्त न घाघरा  
लुंगी से कबूतर निकला, आबरा-का-डाबरा  
झूठन की हँसाई हुई, खुला भेद माज़रा  
पलटन में बजी है ताली, सोलह-सोलह मातरा”

सुबू ने धीरे से नानू से पूछा- “क्या लगता है, तीन हिस्से होंगे?”

“क्यों नहीं होंगे!”

अपनी बेवकूफी पे सुबू शर्मिदा हुआ, बात शर्मिदा होने की थी भी, सॉरी बोलकर उसने अपने चेहरे पर और अधिक भक्ति भाव ओढ़ने की कोशिश की और टुकुर-टुकुर काले परदे को निहारने लगा। चमड़ी के रंग की चुस्त पैजामियाँ पहने दोनों औरतें मुस्कुराईं और उन्होंने पर्दा ऐसे छोड़ दिया जैसे अलिफ़-लैला में मालिकाएँ चेहरे से हिजाब गिरा देती थीं। हिजाब गिरा और सामने ‘तीन’ जादूगर शंकर, मुस्कुराते पाए गए।

जादू की जीत हुई, महेश मोटा हार गया। बहारिस्तान की जीत हुई। कॉमिक्स की दुनिया की

जीत हुई। हर बच्चे के मासूम भरोसे की जीत हुई। जादूगर शंकर तीन तरह की मुस्कुराहट से तीन जगह मुस्कुरा रहा था। पर्दा वापस लाया गया, वापस गिराया गया- जैसे कि कैसेट उल्टी बजाई गई हो और कैसेट के उल्टी बजते ही तीनों जादूगर शंकर, वापस एक जादूगर शंकर में इकट्ठा हो चुके थे।

जादूगर शंकर ने जनता की तालियों का अपनी मुस्कुराहट से शुक्रिया अदा किया और फिर से ऐलान किया- “अब आपमें से कोई एक यहाँ पर आएगा और मैं उसे गायब कर दूँगा।”

“हाँ! तो कौन यहाँ आने वाला है, गायब होने के लिए?”

ये एक बहुत बड़ा सवाल था। पूरे पंडाल में कुल तीन लोग खड़े हुए लेकिन अचानक संख्या तीन से एक हो गई, क्योंकि दो को उनके नातेदारों ने ‘पागल हो गया है क्या?’ कह कर वापस बिठा लिया। पहली लाइन में अभी तक खड़े इंसान को जादूगर ने बाइज़ज़त ऊपर बुलाया। दोनों औरतें आई, पर्दा लगाया, बुदबुदाहट हुई, पर्दा वापस गिराया और जादूगर ने मंतर पढ़ा-

“नंग-धड़ंगे सच आया, न बुश्ट न घाघरा  
लुंगी से कबूतर निकला, आबरा-का-डाबरा  
झूठन कि हँसाई हुई, खुला भेद माज़रा  
पलटन में बजी है ताली, सोलह-सोलह मातरा”  
वो इंसान गायब किया जा चुका था।

## आइडिया, पैटर्न, नथुने और आखिरी सिक्के

दिन भर जादू की दुनिया में हिलोरें लेकर दोनों जब घर लौटे थे तो ऐसे भाव-विभोर थे जैसे कि सुहागरात की अगली सुबह आदमी और औरत भाव-विभोर पाए जाते हैं। दोनों बोलते कुछ न थे, बस एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराते और पता नहीं क्यों शरमाते भी जाते। तमाम देर यही उपक्रम दोहराने के बाद नानू ने सुबू से कहा- “भाई, मैं सोच रहा था कि अगर कल को जादूगर हमें गायब कर दे तो? तो हम महेश मोटे के चुंगल से बच जाएँगे। साला जब हमें देख ही नहीं पाएगा तो नाक क्या खाक घिसवाएगा, क्या बोलता है?”

सुबू की हालत फिर ऐसी हो गई थी जैसे भगवान राम के आगे हनुमान जी हों। वो कहना चाहता था कि भगवन! आप तो जो भी करेंगे वो सही ही होगा। लेकिन सुबू कुछ कह नहीं पाया। बस सोच ही रहा था कि नानू की खोपड़ी में इतने आइडिये आते कैसे हैं।

“यार देख, हमारे पास अभी भी पचास पैसे के तीन सिक्के और हैं। हमारे पास मतलब भगवान के पास। यानी कि हम तीन बार और जादू देख सकते हैं और अगर तीनों में से एक भी बार उसने हमें आगे बुला लिया तो समझ कि जैक-पॉट लग गया। इतना चांस तो ले ही सकते हैं। क्या बोलता है?”

सुबू को मास्टर प्लान बहुत पसंद आया। तय किया गया कि दोनों मंदिर जाकर भगवान से

बाक्रायदा क्षमा माँगकर सिक्के ले आएँगे और अपनी किस्मत आजमाएँगे और अगर ऐसा हो गया तो इसका मतलब ही यही है कि भगवान भी चाहता था कि उसको बीच में टाँग अड़ाने की ज़रूरत ही न पड़े और काम भी हो जाए। अगले दिन दोनों मंदिर गए और सिक्के लेकर जादूगर के पंडाल में पहुँचे।

दोनों आगे वाली सीट पर ठीक उसी जगह बैठे जहाँ से, पिछली बार, आदमी को जादूगर ने ऊपर बुलाया था। जादूगर ने वही सारे जादू फिर से उसी महारत और सफ़ाई के साथ दिखाए, लेकिन दोनों को तो बस ग़ायब होने वाले जादू का इंतज़ार था। जादूगर ने फिर से जनता से वही सवाल पूछा। इस बार फिर चार-पाँच लोग ही खड़े हुए लेकिन एक ही आदमी की किस्मत बुलंद हुई, नानू और सुबू का नंबर नहीं आया।

लेकिन दोनों ने हिम्मत नहीं हारी। दो दिन और किस्मत आजमाने की कोशिश की लेकिन ढाक के तीन पात। कम्बख़त हर बार कोई और ही बाज़ी मार ले जाता था। दोनों जासूसी दिमाग़ लगाकर रोज़ इस बात का पैटर्न समझने की कोशिश करते थे कि जादूगर आख़िरकार कहाँ बैठे आदमी को उठाता है या उसकी फ़ेवरिट पोजीशन क्या है। दोनों रोज़ जादू देखने के बाद घर जाकर मिट्टी पर पंडाल का कच्चा नक्शा बनाते थे और ये भिड़ाने की कोशिश करते थे कि कल संभावित जगह कौन-सी हो सकती है। वैसे तो उन्हें भी कुछ खास समझ नहीं आ रहा था कि वो दोनों ये सब 'क्या' कर रहे हैं पर ये ज़रूर समझ आ रहा था कि वो ये सब 'क्यों' कर रहे हैं।

कल से स्कूल खुलने वाला था। पचास-पचास के चारों सिक्के ख़त्म हो चुके थे। ग़ायब होने का मास्टर प्लान फुस्स हो गया। जिसका सीधा-साधा अर्थ ये था कि महेश मोटा जीतने वाला है।

सुबू ने कहा- "अब?"

"अब मतलब?"

"अब मतलब कल क्या होगा। नाक तो पहले ही घिस चुकी है ख़ाली नथुने बक्राया हैं। अब कल पता नहीं क्या घिसवाएगा।"

"कुछ नहीं होगा, चल जल्दी से जादूगर के कमरे में चल। उसके पैरों पर गिर जाएँगे। देखते हैं कुछ-न-कुछ तो होगा ही।"

दोनों तंबू के नीचे से सरक गए। शंकर दोनों को देख कर हैरान था। हालाँकि वो कुछ-कुछ समझ रहा था, क्योंकि ये दोनों कम्बख़त, रोज़ पंडाल में आकर, अपनी एड़ियों पर उचक कर, दाहिना हाथ तानकर, चार इंच से छह इंच बनने की मशक्कत करते थे। ताकि जादूगर किसी तरह उन्हें ऊपर बुला ले। हाथ इस तरह से दायें-बायें लहराते थे जैसे सरेंडर करने के लिए दुश्मन झंडा लहरा रहा हो।

ऐसी मन-लुभावन मूर्तियाँ दिमाग़ में एक बार छप जाती हैं तो आसानी से मिटती नहीं हैं। शंकर पहचान गया था।

"तुम दोनों यहाँ कहाँ से आ गए?"

शंकर आगे कुछ बोल पाता, उससे पहले ही दोनों उसके पैरों पर गिरकर दंडवत करते पाए गए। दोनों के चेहरे ज़मीन की ओर थे इसलिए ये नहीं समझ आ रहा था कि कौन-सी आवाज़ किसकी थी लेकिन आवाज़ें कुछ इस तरह थीं-

“शंकर जी हमें प्लीज़ बचा लो!”

“नहीं तो महेश मोटा हमारा कचूमर बना देगा। उसने हमें पचास-पचास बार एक जवाब लिखने के लिए कहा है।”

“लेकिन हम पचास-पचास बार जवाब लिखेंगे तो हमारी उँगलियों को लकवा मार जाएगा। हमें प्लीज़ गायब कर दो जिससे कि वो हमें देख न पाए।”

“हाँ! हमें प्लीज़ गायब कर दो। नहीं तो... बस हमें प्लीज़ गायब कर दो।”

भगवान् की जगह जादूगर ने ले ली थी। ज़रूरत में जो ‘ज़रूर’ आए वही भगवान।

“हमारी चवन्नियाँ भी खत्म हो गई हैं शंकर जी। प्लीज़ हमें गायब कर दो!”

“छोकरो, मैं तुम दोनों को गायब नहीं कर सकता हूँ”- शंकर ने साफ़ कह दिया। जादूगर इतना निष्ठुर-निर्दयी-निर्मम-निर्मोही कैसे हो सकता था? एक पतली आवाज़, और दूसरी उससे तनिक और पतली आवाज़, इस कुठाराघात से ऐसे सुन्न हो गई थी जैसे ज़ेब में से शब्द खत्म हो गए हों। दोनों ने ज़ेबें उल्टा करके बाहर निकाल कर, झाड़-झाड़ कर भी देखा। न तो ज़ेब में कोई शब्द ही बचा था और न ही कोई आइडिया।

सुबू और नानू ने वही किया जो इस समय सबसे बेहतर तरीका हो सकता था। यह प्रयास सायास था या अनायास ये तो नहीं पता लेकिन दोनों की आँखों से अश्रु-धाराएँ ऐसे बह रही थीं कि जादूगर के एक-एक कतरे को आखिरी ज़र्रे तक अपने में बहा ले गईं। जादूगर को जल्दी ही अपनी बात वापस लेनी पड़ी।

“अच्छा ठीक है मैं तुम दोनों को गायब कर दूँगा। लेकिन मेरी एक शर्त है। तुम दोनों सिर्फ़ महेश मोटे के सामने गायब हो सकते हो। बाक़ी सब लोग तुम्हें देख सकते हैं, बोलो मंज़ूर है?”

मंज़ूर न होने की गुंजाइश ही नहीं थी। दोनों ने झट-पट अपनी आँखें बंद कर लीं। जादूगर ने आँखें खोलने को कहा।

“अब जाओ।”

“पहले गायब तो करो।”

“तुम दोनों गायब हो चुके हो, महेश मोटा तुम दोनों को नहीं देख पाएगा। अब जाओ यहाँ से।”

“लेकिन तुमने वो सब तो कहा ही नहीं, वो...कुछ.. नंग धड़ंगे.. बुशार्ट और घाघरा...?”

“मैंने कहा न, तुम दोनों गायब हो चुके हो!”

## आल्हा ऊदल बड़े लड़ईया, बैल बेच के लाए गधईया

रात भर दोनों को खुशी से नींद नहीं आई। दोनों दिमाग में तरह-तरह के प्लान बना रहे थे। सुबू सोचता था कि वो पीछे से जाकर महेश मोटे की पतलून पर चॉक से एक बड़ा-सा गोला बना देगा ताकि वो बोर्ड पर लिखने के लिए पीछे घूमे तो पूरी क्लास उस पर हँसे।

अगले दिन दोनों, सबसे पहले जाकर, क्लास में बैठ गए। महेश मोटे का इंतज़ार बड़ी बेसब्री से किया जा रहा था। सभी बच्चों को हैरानी हो रही थी कि आज दोनों बड़ी तबियत से पिटने वाले हैं फिर भी इतनी ढिठाई और बेशर्मियत से हँस क्यों रहे हैं। खैर, बेशर्मों को 'बाशर्म' बना देने वाला महेश मोटा आ गया था और उसकी आँखें दोनों को खोज रही थीं। दोनों की हँसी थामे नहीं थमती थी। दोनों हथेलियों से कस कर होंठ दबा कर हँसते थे। लेकिन महेश जी उन दोनों को खोज नहीं पा रहे थे।

“आज कहाँ हैं दोनों ढपोर-शंख?”

एक सूखे लड़के ने मोटी आवाज़ में जवाब दिया- “सर वो दोनों आज आगे बैठे हुए हैं न!”

“ओ हो, तो आज यहाँ बैठे हैं मेरे दोनों वीर बहादुर आल्हा और ऊदल। आइए अपनी-अपनी कॉपी दिखाइए। लिखा है न पचास-पचास बार?”

दोनों मुँह खोले, अवाक् निर्निमेष महेश जी को निहार रहे थे। दोनों को काटो तो खून नहीं। जादूगर उनके साथ धोखा नहीं कर सकता था! या फिर उसका जादू महेश जी पर चला ही नहीं? दोनों अपनी जगह से हिलने की स्थिति में नहीं थे। महेश जी ने उन्हें कष्ट देना उचित भी नहीं समझा। खुद अपने हाथों से दोनों का एक-एक कान पकड़ कर स्टेज पर मूर्तिवत स्थापित कर दिया। दोनों खूब उड़ाए गए।

‘खूब’ भी और ‘बहुत-खूब’ भी।

एक कमज़ोर रग दब-सी गई थी, उपाय ज़रूरी था और चोट जब इस तरह की हो तो उसका उपाय सिर्फ़ बदला होता है। बदला गणित के मास्टर से अब क्या ही लिया जाता। बाद में भले ही लिया जाता, अभी तो जादूगर से हिसाब-क्रिताब बाक़ी था। दोनों ऐसे रोते थे जैसे ब्रज की गोपियाँ। किसी भी उद्धव का कलेजा उन दोनों को देख कर डोल ही जाता। सुबू ने नानू से कहा- “चल सीधे पंडाल।”

“शंकर?”

“हाँ, हिसाब-क्रिताब किए बिना साँस नहीं लिया जाएगा।”

“क्या लगता है तुझे, होगा वो वहाँ? जिसके मन में चोर होता है वो पहले ही डर के भाग जाता है।”

“मुझे नहीं मालूम, बस चल वहाँ।”

बस्ता टाँगे हुए दोनों सीधे शंकर के पंडाल में पहुँचे। अब बदला लेने की बारी थी। लेकिन

बदला कैसे लेना था ये दोनों में से किसी को पता नहीं था। दोनों एक-दूसरे का और फिर शंकर का चेहरा देख रहे थे।

चुप्पी तोड़ी गई।

“तूने हमारे साथ ऐसा क्यों किया?”

सवाल विद्रोह के साथ पूछा गया था और खत्म कारुण्य के चरम पर हुआ। आए बदला लेने थे लेकिन हुआ कुछ और ही। सवाल खत्म करते-करते दोनों इतना रोए जितना कि महेश मोटे के मारने पर भी नहीं रोए थे। अगर कोई शंकर से पूछता तो उसके अनुसार ये चीटिंग थी। दोनों बच्चे लड़ लेते तो ठीक था, कोई शक्तिशाली इंसान आकर उसे पीट देता तो भी ठीक था। लेकिन ये.. ये तो सरासर चीटिंग थी। क्योंकि इसका कोई भी उपाय, उत्तर, प्रत्युत्तर अथवा नुस्खा उसके पास नहीं था। अब अगर वो अपनी जादू की टोपी में हाथ भी डालता तो कुछ निकल कर नहीं आता। शंकर अपना इंद्रजाल भी चलाता तो वो एक का तीन हो जाता लेकिन फिर पीर भी तीन-गुनी हो जाती।

शंकर ने धीरज रखा और पूछा- “क्या, तुम लोग गायब नहीं हुए?”

सुबू चिल्लाया- “होते कैसे? तुम ढोंगी हो।”

“दुखी मत हो छोकरो, कुछ कम-ज़्यादा हो गया होगा। ये जादू भी एकदम खाने के पकवान की तरह होता है मेरे दोस्त। और इसका मंतर-नमक-धनिया-हल्दी के माफ़िक होता है। एक-आधा चुटकी कम ज़्यादा हुआ नहीं कि सत्यनाश हो जाता है। एक-दो मिनट ज़्यादा पकाया नहीं कि सब गुड़-गोबर। इस बार मैं पुनरावृत्ति मंतर मारूँगा।”

बहुत देर से चुप खड़ा नानू बोला- “उससे क्या होगा?”

“पुनरावृत्ति मंतर से एक चीज़ बार-बार हो जाती है। दोहराई जा सकती है। तो बस! तुम दोनों एक-एक बार अपनी कापी पर वो लिख डालो जो कि मास्टर जी को दिखाना है। आज पूर्णमासी है, मैं उस पर अपना जादुई पंख फिराऊँगा और वो उसकी पचास बार पुनरावृत्ति कर देगा।”

सुबू ने नानू की तरफ़ देखा, आँखों-ही-आँखों में सवाल पूछा गया कि जादूगर पर अब भरोसा करना है या नहीं? सवाल का जवाब ‘हाँ’ था। मरता क्या न करता। दोनों ने एक-एक बार कॉपी पर जवाब लिख कर जादूगर को कॉपी थमा दी।

“अब?”

“अब तुम दोनों कल सुबह आना, मैं रात को बारह बजे इन दोनों पर पंख फिराऊँगा। कल सुबह आकर अपनी कॉपी ले जाना।”

**पूर्णमासी, पुनरावृत्ति मंतर और जादुई पंख**

दोनों को रात भर नींद नहीं आई। आती भी तो कैसे? मन में तरह-तरह के सवाल उठते थे। कल उनके हर एक भरोसे का फाइनल एग्जाम था। कल पिछड़ने का मतलब था कि शायद उनकी काल्पनिक दुनिया झूठी है। नागराज, ध्रुव, तौसी, उसका अभी-अभी पैदा हुआ बेटा टनी, बरगद का जिन्न और...शायद अजूबा भी। नानू ये एकदम नहीं चाहता था कि दुनिया में कोई भी हरकत उसके इस भरोसे को तोड़ सके।

उसे वो सारे मौक़े याद आ रहे थे, जब-जब उसका भरोसा सच साबित हुआ था। सब कुछ उसके दिमाग़ में फिर से एक चक्कर घूम जाता था। मसलन, क़िताब में दबे पंख से बच्चा निकलना कोई मामूली बात नहीं थी। गया प्रसाद को जिन्न चढ़ जाना भी मामूली नहीं हो सकता था। उसकी चुंबक भी अभी तक सटीक काम करती थी।

दिमाग़ में यही सब गढ़ते-बुनते उसे नींद आ गई।

सुबह-सुबह उसकी नींद सुबू की सिग्नलिंग से खुली। वो आज फिर गा रहा था और बेतहाशा नाच रहा था।

“आज की रात सनम डेंस करेंगे

डेंस करेंगे, रोमेंस करेंगे”

नानू ऐसे छिटक के खिड़की पर आया जैसे एक कंचा मारो तो दूसरा कंचा अपनी जगह से छिटक जाता है।

“अबे क्या हुआ?”

“आज की रात सनम डेंस करेंगे

डेंस करेंगे, रोमेंस करेंगे”

“अबे बोल न भाई, हुआ क्या?”

“आज की रात सनम डेंस करेंगे

डेंस करेंगे, रोमेंस करेंगे”

“अबे बोल नहीं तो मैं तेरा मुँह तोड़ दूँगा। जादूगर से कॉपी लेने नहीं जाना है क्या?”

“भाई मेरे, रात भर ऐसी फटी हुई थी कि नींद ही नहीं आ रही थी। आज सुबह जल्दी से उठ कर सीधे शंकर के पंडाल में गया। डर लगता था कि कहीं वो हम दोनों से डर कर पंडाल उखाड़ कर भाग न गया हो। लेकिन ये देख...”

सुबू ने शर्ट के बटन खोल कर अंदर से दोनों कॉपियाँ निकालीं तो उसकी मुस्कुराहट देखकर नानू समझ गया की पूर्णमासी का पुनरावृत्ति मंत्र काम कर गया है। सुबू ने पूछा, “भाई, क्या लगता है? उसने खुद तो नहीं लिख दिया होगा न रात भर में?”

नानू ने कहा- “पागल है क्या! यही तो जादू होता है मेरे दोस्त। ये जादू भी एकदम खाने के

पकवान की तरह होता है मेरे दोस्त और इसका मंत्र नमक-धनिया-हल्दी के माफ़िक। एक-आधा चुटकी कम ज़्यादा हुआ नहीं कि सत्यनाश हो जाता है। एक-दो मिनट ज़्यादा पकाया नहीं कि सब गुड़-गोबर।”

दोनों ने जल्दी-जल्दी अपना झोला टाँगा, उसमें कॉपियाँ भरीं और कुलौंचे मारते हुए, छोटी साँसों को बड़ी साँसों से काटते हुए स्कूल के लिए रफ़ूचक्कर हो गए।

जादू की दुनिया जीत चुकी थी।

महेश मोटा हार गया था।

सुपर कमांडो ध्रुव जीत गया था।

नागराज और टनी जीत गए थे।

लड़कपन जीत गया था।



## हीरो

मैंने पहली बार उसे जुहू में एक चाय की दुकान पर देखा था। उसके आने से पहले दुकान सिर्फ एक 'दुकान' थी, जिसमें एक बेचने वाला होता है, कुछ खरीददार होते हैं और बिकने के लिए नुमायाँ कुछ असबाब होते हैं। उसके आते ही दुकान एक जीते-जागते सिनेमाघर में तब्दील हो गई। वो इतनी रंगीन हरकतों वाला इंसान था कि वो मुझे किसी केलाइडोस्कोप जैसा लगा। इच्छा होती थी कि बस केलाइडोस्कोप के करीब आओ, अपनी आँखें तिरछी करके उसके नशेमन में झाँको और कुछ देर के लिए दोनों आँखें उसके चूड़ीदार मुहाने पर छोड़ दो। बचपन में जब हमारे मोहल्ले में एक बूढ़ा अपने ठेले पर केलाइडोस्कोप लाता था तो मुझे उसके अंदर कई बार वो चीज़ें भी दिख जाती थीं जो मोहल्ले के और बच्चों को नहीं दिखाई पड़ती थीं। एक बार मैंने उसके अंदर एक चिड़िया देखी, जिसका एक पंख सोलह रंगों का था और चोंच सतरंगी थी। एक बाँसुरी देखी जिसमें छेद की जगह अलग-अलग रंगों के सूरज थे। एक मर्तबा पिसी हुई चूड़ियों का घिसा हुआ चूरन भी देखा। एक बार तो मुझे अपनी दादी का चेहरा भी दिखलाई पड़ा। लेकिन उस दिन सभी बच्चों को पक्का यकीन हो गया कि मैं गप्पी-गपोड़ हूँ, क्योंकि उनके हिसाब से उसमें चिड़िया, बाँसुरी, सूरज और चूड़ियाँ हो ही नहीं सकती थीं और दादी तो बिलकुल नहीं हो सकती थीं, क्योंकि दादी तो कब की मर चुकी थीं। उस दिन से मैंने भी उन्हें सब कुछ कहना-बताना बंद कर दिया। कुछ-कुछ बता देता था, बाक़ी का छुपा लेता था।

हाँ! तो उस दिन जब वो चाय की दुकान पर आया तो मुझे बचपन की इसी घटना की याद आ गई। हालाँकि, दुकान पर बैठे बाक़ी लोगों से मैंने वो सब नहीं कहा, जो मैं उसमें झाँक कर देख पा रहा था। अगर कोई पूछता तो उनकी बात से इत्तफ़ाक़ रखते हुए मैं बस इतना कह देता कि हाँ! भई इंसानों जैसा कोई इंसान आ गया है। वह चाय का कप पकड़कर खड़ा हुआ था। जिस हाथ में चाय का कप था वो हवा में था, दूसरे हाथ की मुट्ठी कमर की हड्डी पर टिकी हुई थी, एक पाँव का पंजा दूसरे से थोड़ा आगे निकला हुआ था और शरीर के ऊपर का हिस्सा उसके नीचे के हिस्से पर नब्बे डिग्री से थोड़े कम के एंगल पर झुका हुआ था। खड़े होने के पोश्चर और कप पकड़ने के अंदाज़ से एकबारगी तो ऐसा लगा कि गोया खुद अमिताभ बच्चन बैठे हुए हैं (हो सके तो ये बात किसी को बताइएगा नहीं)।

“ए झंडू! आज बिना पैसा दिए जाने की सोचियो भी मत। नहीं तो सारा हीरोगिरी निकाल देगा तेरी।” चाय वाले ने कहा।

उसने चाय वाले की तरफ़ ध्यान नहीं दिया। वो मेरी ओर मुड़ा और बोला- “साला! हर आदमी सिर्फ़ सेंटर के किरदार को ही पहचानता है। साइड के किरदार की तो कोई इज़ज़त ही नहीं करता।”

मुझे नहीं पता कि उसने सारे लोगों में से बातचीत के लिए मुझे ही क्यों उठाया, इसलिए थोड़ी-सी हैरानगी से मैंने कहा- “जी? मैं आपकी बात समझा नहीं।”

वो बोला- “अरे तुम क्या भैया...अभी तो कोई भी समझ नहीं पा रहा है। स्ट्रगलर हैं न हम। लेकिन एक बात ये भी जान लो, कि भैया एक दिन कौनो रोक नहीं पाएगा हमको। यहाँ बंबई में बस पहला ब्रेक मिलने भर की देर होती है। बच्चन भी जब यहाँ आए रहे होंगे न, तो लोग एगदम्मे टोपा समझ के टहलाए रहे होंगे उनको बहुत दिन। ससुर लंबा है, तिरछा है, टेढ़ा है, ऐसा बोलते थे लोग। मालूम है, मृणाल सेन की फ़िल्म में खाली आवाज़ दिए थे सन् उनहत्तर में, लेकिन उसके बाद... रुके नहीं। दीवार, शोले, तिरशूल, जंजीर, अभिमान, नमक हराम सब-की-सब एक नंबर की फ़िल्म। दनादन। टिप-टाप। बस पहला ब्रेक मिलने की देर होती है भैया...पहला ब्रेक।”

“मतलब माया नगरी के स्ट्रगलर हो?” मैंने कहा।

“स्ट्रगलर मत कहो बे, टीपू सर कहो। हमारे दोस्त लोग हमको इसी नाम से बुलाते हैं। नए लड़कों में हमारी बहुत इज़ज़त है।” उसने कहा।

“अभी आप ही ने तो कहा था स्ट्रगलर!”

“हाँ! तो हम यूँ ही कह दिए होंगे, कहने से क्या होता है। ऐसा नहीं है कि हम कोई नए लौंडे हों। काम बहुत किए हैं फ़िल्मों में, बस वो कभी ‘मेन वाला’ रोल नहीं किए ना, कौनो हीरोइन को हाफ़ पैट पहन के नचाए नहीं ना- ‘शीला, शीला की जवानी, करे मनमानी’। इसलिए नोटिस नहीं किए गए। वो फ़िल्म याद है आपको, मैं प्रेम की दीवानी हूँ?”

“हाँ! याद है” - मैंने कहा।

“हाँ! तो उसमें एक सीन रहता है।” ऐसा कहते-कहते वो सौ किलो का उत्साह अपनी छाती में खींचकर खड़ा हो गया। घूम-घूमकर पूरा सीन फ़्राईडे-फ़र्स्ट-डे-फ़र्स्ट-शो जैसे सुनाने लगा।

“उस सीन में करीना कपूर साइकल से ऐसे जा रही होती हैं...वें...जूँ-जूँ...वें...और उनके रस्ते में अचानक से एक लौंडा आ जाता है...फिश...करीना साइकल संभाल नहीं पाती हैं, चौंक जाती हैं एकदम और उस लौंडे को टक्कर मार देती हैं...फटेक...और वो लौंडा दूर फेंका जाता है। हाए मोरी दैय्या मर गए, हाए अम्मा जान निकल गई चिल्लाते हुए।”

“जानते हैं वो लड़का कौन था?”

“कौन था?”

“अरे वो लड़का हम थे रे बांगड़ू। करीना खुद हमको शाबासी भी दी थीं और साथ में सॉरी और पीले रंग का रुमाल भी। इस तरह के छोटे-मोटे रोल हमने चालीस-पचास फ़िल्मों में किए हैं।”

जो लोग अभी तक चाय की दुकान पर इधर-उधर बैठे हुए थे, वो अब खड़े हो गए। उन सबके एक हाथ में चाय का प्याला था और दूसरे हाथ की मुट्ठी, कमर की हड्डी पर टिकी हुई थी।

उसमें से कुछ लोग हैरान थे और कुछ लोग चिढ़-से गए थे। सवालियों की बौछार शुरू हो गई-

“काय रे, बेवकूफ़ बनाने को साला हम ही लोग मिला है तुमको?”

“कभी अनील कपूर के साथ भी काम किया है, क्या रे?”

“सुने हैं अमिताभ असल में उससे भी ज़्यादा लंबा है जितना टी.वी. पर दिखाई देता है?”

“करीना से तुम्हारा बात भी हुआ है या खाली टक्कर ही मारी थी वो तुमको?”

“अच्छा! ये बताओ कि आजकल कोई तगड़ा विलेन नहीं आ पा रहा है फ़िल्म लाइन में, तो अगर कोई आदमी हट्टा-कट्टा दिखता देता है, डाईलॉग वगैरह भी सही से दे देता है, तो उसका कुछ चांस है क्या?”

सवाल उसके आगे ऐसे इकट्ठा कर के रख दिए गए थे जैसे एक के ऊपर एक, चार ब्रेड टोस्ट गरम करके रख दिए गए हों। एक झटके में माहौल बदल चुका था। शायद अब उन लोगों को भी केलाइडोस्कोप में वो सब नज़र आने लगा था जो पहले सिर्फ़ मुझे नज़र आ रहा था। उनमें से किसी को उसके शरीर में करीना कपूर की छुअन के निशान दिख रहे थे, तो किसी को सच में पुरानी फ़िल्म का वो सीन याद आ रहा था जिसमें उस लड़के ने शक्ति कपूर और अनिल नागरथ के साथ फ़ाइट सीन किया था और किसी को वो गाना भी याद आ गया जिसमें वो सैफ़ अली के पीछे खड़े लौंडों के बीच ‘जब भी कोई लड़की देखूँ, मेरा दिल दीवाना बोले ओले-ओले’ कर रहा था।

टीपू अब कुछ देर के लिए सेंटर का किरदार बन चुका था, और बाक़ी के लोग साइड के किरदार बने उसे शिष्ट-शालीन चेलों की तरह सुन रहे थे।

“हम कोई कपूर, चोपड़ा या जौहर लोग के ख़ानदान से तो हैं नहीं। इसलिए हमको यहाँ पैर ज़माने में दिक्कत हो रहा है। हाँ! लेकिन ऐसा नहीं है कि हम यहाँ पे एकदम अनाड़ी की तरह चले आए। हमारा बाप बहुत साल फ़िल्मों में काम किया है। हर तरह का काम। साड़ी पहन के औरत बना है, आग के छल्ले में से कूदा है। सारा कठिन-कठिन स्टंट किया है। बात सन् सत्तर की है जब किसी को दो मोटर साइकिल वाला स्टंट करना नहीं आता था। एक फ़िल्म की शूटिंग चल रही थी। बाप हमारा भीड़ में खड़ा था, डायरेक्टर से बोला- साहब आपका हीरो जितना जानदार है उस हिसाब से एक मोटर साइकिल पर आता अच्छा नहीं लगता। एक मोटर पर तो कोई भी ऐरा-गैरा लौंडा-छाप लड़का आ जाएगा। इसको तो दो मोटर साइकिल पर आना चाहिए। डायरेक्टर बोला कि अबे झंझू! दो मोटर-साइकिल पे कोई कैसे आ सकता है? मेरा बाप बोला कि मैं आऊंगा ना साहब, उसमें ऐसी कौन-सी बड़ी बात है। डायरेक्टर सन्न रह गया, काटो तो खून नहीं। उसने बापू को एक येजडी मोटर-साइकिल और एक राजदूत पकड़ाई और फिर उसने ऐसा स्टंट कर के दिखाया कि सबके तोते फेल हो गए। और साहब, बस उस दिन से सारा टशनी हीरो लोग ऐसे ही आता है। दो मोटर साइकिल पे...ब्रूम...ब्रूम...ब्रूम...।”

“अबे लेकिन अजय देवगन ने भी तो ‘फूल और काँटे’ में वो वाला स्टंट किया था”- किसी ने कहा।

“हाँ! तो तुमको क्या लगता है बे, कि हम कौन-सी फ़िल्म की स्टोरी बता रहे थे इतनी देर से। ‘पागल प्रेमी आवारा, पागल मजनू दीवाना’...अबे ‘फूल और काँटे’ की ही बात कर रहे थे। मेरा बाप बहुत जबर आदमी था। ट्रिक-फोटोग्राफर बनने को बंबई आया था। वो फ़िल्म होती थी न दारा सिंह जी की, जिसमें वो अपनी छाती चीरकर कहते थे ‘जय सिरी राम!’ और उनकी छाती में राम और सीता ‘इस तरह’ मुस्कुराते मिलते थे।” दीपिका चिखलिया और अरुण गोविल की मुस्कान अपने होंठों पर ओढ़ते हुए उसने कहा।

“वो सब स्पेशल एफ़ेक्ट डालना उसको आता था। उसका सबसे फेमस कलाकारी वो था जिसमें एक लड़की अपनी छाती से ट्रेन रोक देती है। मालूम है, रामायण में जो एक तीर से सौ तीर निकलता था, ऐसे ‘सूँऽऽ...’ करके, कौन डिजाइन किया था?”

“कौन डिजाइन किया था?”

“मेरा बाप।”

सुनने वालों ने सर ऊपर करके, राम और सीता को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

“आजकल कौन-सी फ़िल्म कर रहा है तुम्हारा बाप?”- किसी ने हाथ जोड़े हुए पूछा।

“आजकल? हुँह, आजकल कुछ नहीं कर रहा। अच्छा-खासा काम चलता था उसका, लेकिन फिर धीरे-धीरे कम्प्यूटर आ गया साला...कम्प्यूटरऽ और कल का छोकरा लोग बटन दबा-दबा के वो कलाकारी करने लगे जो मेरा बाप इतनी मेहनत लगा के करता था।”

“हाँ! तो आजकल टेक्नोलॉजी का दौर है भाई। जो अपडेट नहीं रहेगा वो पीछे तो छूट ही जाएगा। आज की तारीख में यदि आपको कम्प्यूटर का ज्ञान है और आप फ़ास्ट इंग्लिश बोल सकते हैं, तो बस कोई रोक नहीं सकता है आपको”, किसी ने यूँ ही कह दिया। सब लोगों ने उसकी बात से सहमति भी जताई और लोग एक-एक करके वो अनुभव बताने लगे जब उनके पड़ोसी के लड़के, भाई, भतीजे, साढ़ू, बहनोई ने इसी कला में पारंगत होकर, मुँह में रजनीगंधा भरके, क़दमों में दुनिया कर ली थी। अगर टीपू चिढ़कर बीच में ही उनकी सोच का चालान नहीं काटता तो बहस की गाड़ी आज बॉलीवुड से यू-टर्न लेकर बकलोल-पुर के लिए निकल लेती।

“मेरा बाप कलाकार था”- वो जोर से चीखते हुए बोला- “और ये लोग हैं साले फांटीबाज! चूतिया बनाते हैं एक ठो कम्प्यूटर लेकर। काम से बाहर हो गया। भूखों फिरता रहा। शरीर से मज़बूत था तो हीरो लोग का बॉडी डबल बनाने का काम चालू किया, लेकिन नए हीरो लोग का बॉडी डबल भी कहाँ से बनता वो। इन लोग का बॉडी भी कोई बॉडी होता है? उनके जैसा मेरा बाप दिखता भी तो कैसे? इन लोग के पेट तो होता नहीं है, बस छाती ही होती है और पेट के नीचे छः-छः पैक बने होते हैं। जिसके एक भी पैक कम, वो हीरो क्या घंटा बनेगा।”

“और फिर बाप मर गया क्या तुम्हारा?”, किसी ने जिज्ञासा से पूछा। इस तरह से ऐसा सवाल पूछना अटपटा और ढीठ तो था ही, लेकिन जैसे आप किसी फ़िल्म में डूब जाएँ तो क्लाइमैक्स आते-आते उसमें आगे क्या होने वाला है, का पता अपने आप लग जाता है, वैसे ही सवाल पूछने वाले को टीपू के बाप के मरने का अंदेशा हुआ होगा। हिंदी फ़िल्में वैसे भी बहुत

क्लीशे होती हैं और कुछ एक हिट फ़ॉर्मूलों पर ही बनती हैं। फ़ॉर्मूला नंबर पता लग जाए तो 'दि एंड' साफ़ दिखने लगता है। हिंदी फ़िल्मों की तरह, हिंदी फ़िल्मों के किरदारों की ज़िंदगी भी काफ़ी प्रिडिक्टेबल होती है।

“हाँ! मर गया”- टीपू ने मनोज कुमार की तरह अपने चेहरे को तीन उँगलियों और एक अँगूठे से ढकते हुए कहा- “लेकिन मरते-मरते हम भी अपने बाप को वादा किए थे, कि बाप सिंह! हम बन के दिखाएँगे तुमको हीरो और वो भी असली हीरो। फिर हमारा भी 'डबल' बनने वास्ते लोग लाइन लगाएँगे। उसके मरते-मरते हम खाए क्रसम 'पैदा करने वाले की' और एक बार जो खा लिया क्रसम पैदा करने वाले की, उसको अपना वादा निभाना ही पड़ता है। मालूम है न कि ये क्रसम कौन खाया था?”

“मिथुन, सबका भगवान।”

अब माहौल संजीदा हो चुका था। वैसा ही संजीदा जैसे करन-अर्जुन में शाहरुख और सलमान के मरने पर सारा माहौल गमगीन हो गया था। वैसा ही संजीदा जैसे शोले के क्लाइमैक्स में अमिताभ को गोली लगने पर पूरा-का-पूरा सिनेमाघर संजीदा हो गया था। हीरो लगभग उतना दुखी नज़र आ रहा था जितना मदर इंडिया में सुनील दत्त को गोली से उड़ा देने पर नरगिस नज़र आ रही थीं और उतना ही टूटा हुआ लग रहा था जितना आनंद में राजेश खन्ना की मौत पर अमिताभ बच्चन लग रहा था। इसी बीच चाय की दुकान पर एक नया कस्टमर आया और उसने एक बन-बटर-मलाई ऑर्डर किया। उसकी आमद से हीरो ट्रांस की स्थिति से वापस निकला और उसे जल्दी ही महसूस हुआ कि वो बेकार ही ट्रैजिडी मोड में भटक गया था और अचानक ही कोई क्लाइमैक्स के बीचों-बीच पॉपकॉर्न उठाने निकल लिया। उसे बेइज्जत-सा महसूस हुआ और खुद को संभालते हुए उसने इधर-उधर देखा तो अब तक लगभग पंद्रह से सत्रह लोगों की भीड़ चाय की दुकान पर जमा हो चुकी थी। जो लोग पहले से आए हुए थे वो अभी तक उठे नहीं थे और जो लोग नए-नए आए थे वो काफ़ी-कुछ वैसे क्लू-लेस नज़र आ रहे थे जितना इंटरवल के बाद फ़िल्म में आने वाले लोग होते हैं।

दुकान पर मेरे बाजू में बैठे एक अधेड़ उम्र के इंसान ने हीरो के मोनोलॉग से चिढ़ते हुए कहा- “हर साल यहाँ हज़ारों लोग बस सूटकेस और मुँह उठाकर बंबई चले आते हैं। ज़्यादातर ये वही लोग होते हैं जो अगर बचपन में पढ़-लिख लिए होते तो आज इधर आने की ज़रूरत नहीं पड़ती। लोग सिर्फ़ ऋतिक रोशन को याद रखते हैं कि उसने धूम में कैसे डांस किया। किसी को घंटा याद नहीं होता कि उसके पीछे कितने और कौन लड़के नाच रहे थे। वो सैकड़ों फ़िल्मों में हर हीरो के पीछे आकर डांस करते हैं और उन्हें फिर भी कोई पहचान नहीं पाता। अभी भी वक्रत है बेटा, कुछ काम-धाम करो। धंधा डाल लो। पाव-भाजी की गाड़ी ही लगा लो। जिसमें टैलेंट होता है उसका नाम एक-आध साल में बन ही जाता है।”

हीरो उसकी बात पर हैरान नहीं हुआ। हीरो ने ऐसी बातें सैकड़ों या शायद हज़ारों बार सुनी होंगी। इंसानी कान एक ऐसे दरबान की तरह होता है जो हैसियत, औक्रात और मौक़े के हिसाब से सिर्फ़ चुनिंदा लोगों को अंदर आने की इज़ाज़त देता है और हर एक ग़ैर-ज़रूरी, ग़ैर-मामूली को दरवाज़ा भेड़ कर रुखसत फ़रमाता है। भीड़ में बैठे इस दार्शनिक की बात को हल्की-सी

मुस्कुराहट और चेहरे की चमक से लताड़ते हुए हीरो राज कुमार के अंदाज़ में बोला- “हमारे दोस्त कहते हैं कि हम एक्टिंग बहुत जबर करते हैं। लेकिन तुम ऐसे तो मानोगे नहीं....”

हीरो खड़ा हो गया। तंबू तन चुका था, टिकट बटने लगे थे। हीरो ने कुछ-एक सेकेंड के लिए आँखें बंद की, चेहरे को चार अंगुल आसमान की ओर उठाकर कुछ बुदबुदाया और गहरी साँस ली। शो शुरू हो गया।

शो कुछ ऐसा था कि हीरो, यूँ ही एक फ़िल्म का नाम उठा लेता और उसका कोई यादगार सीन हू-ब-हू कर के दिखाने की कोशिश करता।

“फ़िल्म का नाम लावारिस। हीरो- अमिताभ बच्चन। अपुन वो कुत्ते की दुम है जो बारह बरस नल्ली के अंदर डाल के छोड़ दो तो नल्ली टेढ़ी हो जाती है। अपन सीधा नहीं होता...हाएँ।”

(हीरो अमिताभ के अंदाज़ में मुस्कुराया। दाहिने बैठे लोगों को देखा, बाएँ बैठे लोगों को देखा और तनिक देर के पॉज़ के बाद उसने वापस अपनी आँखें बंद कर लीं।)

“फ़िल्म का नाम गाइड। हीरो- देवानंद। सवाल ये नहीं कि पानी बरसेगा या नहीं, सवाल ये नहीं कि मैं जिऊँगा या मरूँगा, सवाल ये है कि दुनिया को बनाने वाला, चलाने वाला कोई है या नहीं। अगर नहीं है तो परवाह नहीं कि ज़िंदगी रहे या मौत आए, एक अंधी दुनिया में एक अंधे की तरह जीने की कोई परवाह नहीं और अगर है तो देखना ये है कि वो अपने मजबूर बंदों की सुनता है या नहीं।”

(इस बार हीरो ने न ही दाहिने बैठे लोगों को देखा, और न ही बाएँ बैठे लोगों को। बस तनिक देर के पॉज़ और गहरी साँसों के बाद उसने वापस अपनी आँखें बंद कर लीं।)

“फ़िल्म का नाम दामिनी। हीरो- सनी देओल। तारीख पे तारीख, तारीख पे तारीख, तारीख पे तारीख, तारीख पे तारीख मिलती रही है जज साहब लेकिन इंसाफ़ नहीं मिला मी लॉर्ड, मिली है तो बस तारीख।”

“अच्छा! आप लोग को लग रहा होगा कि मैं बस क्लासिक ही कर पाता हूँ? कंटेम्परेरी भी करता हूँ। ये लीजिए-”

“फ़िल्म- गुलाल। रणसा- आवारागर्दी भी करता हूँ, लौंडियाबाजी भी करता हूँ और यदि कोई चूतियापा करता है तो उसको धर भी देता हूँ। गन है मेरे पास, छर्छा घुसेड़ देता हूँ अंदर। हा हा हा।”

“पूरी तैय्यारी से आया हूँ साहब, यहाँ से खाली हाथ वापस नहीं जाऊँगा और न ही अपने बाप की तरह भूखों मरकर। बस पहला ब्रेक मिलने भर की देरी होती है साहब पहला ब्रेक। और आज, हम वो पाकर रहेंगे। मालूम है आज पृथ्वी थियेटर में कौन-कौन आ रहा है हमारा प्ले देखने के लिए?”

“अनुराग कश्यप, दिबाकर बनर्जी, इम्टियाज़ अली और फ़िल्म इंडस्ट्री का और भी बहुत सारा आला डाइरेक्टर लोग। प्ले एक ऐक्टर के बारे में है जो यहाँ पे दर-बदर भटक-भटक कर

थक चुका है। फ्रस्टेट हो चुका है, सरेंडर कर देता है साला, क्योंकि उसकी कला को कोई समझना ही नहीं चाहता। वो बहुत कोशिश करके देखता है लेकिन साली ये बंबई उसको जमती ही नहीं है और क्लाइमैक्स के सीन में वो ज़हर खा लेता है। ज़मीन पे लोटते-लोटते दो मिनट में उसकी मौत हो जाती है। माँ कसम! आज जान डाल देंगे रोल में और अगर जान डाल नहीं पाए तो जान निकाल ज़रूर देंगे। ये देख रहे हैं- 'ज़हर की शीशी'! ऐसा ओरिजनल काम करेंगे कि फट लेगी उन सबकी।"

....कसम पैदा करने वाले की"

"क्या है शीशी में?" किसी ने पूछा।

"पुदीन हरा लग रहा है"- किसी और ने कहा।

"पुदीन हरा ही समझ लो"- हीरो ने कहा। और वो शीशी को मुट्ठी में भरकर चाय की दुकान से चला गया। जब वो जा रहा था तो ज़हर की शीशी उसके हाथ में ऐसे लग रही थी जैसे किसी छोटे बच्चे की मुट्ठी में रोटी लगती होगी।

हीरो के जाने के बाद चाय की दुकान वापस चाय की दुकान हो गई, लोग वापस से लोग हो गए, सामान वापस से सामान हो गया। बातें शुरू हो गईं। एक ने कहा कि उसने इतनी घटिया मिमिक्री अपनी पूरी ज़िंदगी में आज तक नहीं देखी। दूसरे ने कहा कि देवानंद की मिमिक्री वाले पार्ट में तो उसकी हँसी छूटने वाली थी लेकिन वो हँसा नहीं। तीसरे ने कहा कि इनके जैसे पचास चूतिया हर घंटे बॉम्बे सेंटर पर उतरते हैं और सौ यहाँ से वापस निकल लेते हैं। उसके बाद इस बात पर बहस शुरू हो गई कि उसके हाथ में सही में ज़हर था या फिर पुदीन हरा। चाय वाले ने कहा कि ये लड़का बड़का बुकरात है, पहले भी एक बार कह रहा था कि 'मेरी जंग' में ज़हर खाने वाले सीन में अनिल कपूर ने सही में ज़हर खाकर शॉट दिया था और शूटिंग के बीच ही में उसे असल में अस्पताल ले जाना पड़ा था। सुभाष घई ने लाख मना किया कि अनिल भाई इस सीन में ओरिजनैलिटी लाने के लिए ज़हर खाने की कोई ज़रूरत नहीं है लेकिन अनिल कपूर ने इंसिस्ट किया कि घई साहब शॉट बस दो मिनट में ओ.के. हो जाएगा और उसके बाद मुझे तुरंत अस्पताल ले जाया जाए और वैसे भी फ़िल्म की असल कहानी में भी अरुण वर्मा के साथ कोर्ट-रूम सीन में भी यही हो रहा था। घई साहब को अनिल कपूर की बात माननी ही पड़ गई और अनिल कपूर ने न सिर्फ़ ज़ोरदार शॉट दिया बल्कि 'मेरी जंग' सुपर हिट भी हो गई।

पाँचवें ने बस इतना कहा- "घंटा।"

डिस्कशन मुकम्मल होकर अपने मुक़ाम पर पहुँच चुका था।

लोग चाय वाले को पैसा देकर अपने-अपने रास्ते, अपने-अपने काम पर निकल लिए। मैं अभी तक हीरो की कही हुई बात में उलझा हुआ था। "साला हर आदमी सिर्फ़ सेंटर के किरदार को ही पहचानता है। साइड के किरदार की तो कोई इज़ज़त ही नहीं करता।" ठीक ही तो कह रहा था वो।

ये फ़िल्म इंडस्ट्री और हमारी ज़िंदगी दोनों एक-सी ही तो है। दोनों में हम लोग सेंटर में आने

के लिए तरसते रहते हैं। लाइमलाइट में आने के लिए। साइड के किरदारों को कोई नोटिस भी नहीं करता। शर्मा जी इस बात से परेशान रहते हैं कि वर्मा जी का लौंडा फ़र्स्ट आ गया और उनका लड़का एग्जाम में सेकेंड ही रह गया। उनकी लड़की की शादी एक अच्छे घर में हो तो गई, लेकिन पड़ोसी की लड़की की शादी ज़मींदारों के खानदान में हो गई और अब उन लोगों को मोहल्ले में कोई पानी भी नहीं पूछता। हर जगह सिर्फ़ सेंटर के किरदार को ही देखा जाता है।

सेंटर पर रहने वाले के सौ गुनाह माफ़ होते हैं। याद है जब 'सिलसिला' में अमिताभ बच्चन जया को धोखा देकर रेखा के पास चला जाता है? और वो भी तब जब जया के पेट में अमिताभ का बच्चा होता है। उधर रेखा भी संजीव कुमार को छोड़कर बच्चन के पास आ जाती है। सारे लोग फ़िल्म देखकर यही सोच रहे होते हैं कि काश! रेखा को उसका प्यार मिल जाए और अमिताभ को रेखा। ज़रूर कोई वजह रही होगी कि वो ऐसी हालत में जया को छोड़कर आ रहा है। वजह है प्यार और प्यार में सब जायज़ होता है। असल ज़िंदगी में हमारी लड़की ऐसा करती है तो हम चाकू, कुल्हाड़ी, बल्लम, हँसिया लेकर उसका सर काट डालते हैं, लेकिन अमिताभ को सौ गाली माफ़ है।

क्यों?

क्योंकि अमिताभ है सेंटर का किरदार।

और हम हैं साइड के किरदार।

हीरो आज सेंटर का किरदार बनने निकल गया था। मुझे उसकी बात से ज़्यादा ये बात अंदर तक कचोट रही थी कि आज वो प्ले के आखिरी सीन में क्या करेगा? क्या वो वही करेगा जो 'मेरी जंग' में अरुण वर्मा (अनिल कपूर) ने किया था? पता नहीं। मैं कुछ दिन तक अखबार नहीं पढ़ पाऊँगा, न ही मैं वापस इस चाय की दुकान पर दुबारा कभी आ सकूँगा, क्योंकि मैं ये बिलकुल नहीं जानना चाहता कि उस दिन हीरो के साथ क्या हुआ था।

या फिर ये भी हो सकता है कि मैं हमेशा की तरह केलाइडोस्कोप में वो सब देखने की कोशिश कर रहा हूँ जो उसमें था ही नहीं। केलाइडोस्कोप में सिर्फ़ अजीबो-गरीब 'आकार' ही होते हैं, जिनका कोई मतलब नहीं होता। उसमें चिड़िया, बाँसुरी, सूरज और चूड़ियाँ हो ही नहीं सकतीं और दादी तो बिलकुल नहीं हो सकती, क्योंकि दादी तो कब की मर चुकी थीं। अब्सट्रैक्ट चीज़ों में मतलब खोजना बेवकूफी होती है। आप भी मत खोजिएगा।



## मुग़ालते

जब मैं कोठे पर लाई गई थी तो पहले-पहल मुझे लगता था कि कोठे पर लोग सिर्फ़ सेक्स खरीदने आते हैं। धीरे-धीरे मुझे समझ आया कि लोग यहाँ सेक्स के अलावा और भी बहुत कुछ खरीदने आते हैं। सेक्स सिर्फ़ उस 'और भी बहुत कुछ' तक पहुँचने का ज़रिया होता है। जैसे कि जब लोग परचून की दुकान पर जाते हैं तो हर बार एक लिफ़ाफ़ा लेकर लौटते हैं, लेकिन इसका मतलब ये नहीं होता कि वो दुकान पर लिफ़ाफ़ा खरीदने आए थे। दरअसल, वो लिफ़ाफ़े के भीतर रखा सामान खरीदने आए थे।

अगर कोठे को परचून की दुकान मान लिया जाए तो सेक्स ठीक उस लिफ़ाफ़े की तरह होता है। जिसकी जाँच-पड़ताल की जाए तो लिफ़ाफ़े के भीतर मिलेंगे तरह-तरह के सामान और असबाब।

सामान। जैसे कि एक दरोगा हर रात अपनी बीवी खरीदने आता था क्योंकि उसकी पोस्टिंग उसकी बीवी के घर से सैकड़ों मील दूर थी। उसके दिमाग़ में कई बार खयाल आया कि वो दूसरी शादी कर ले। चिढ़ कर कहता था कि साहब, ऐसी बीवी का होना भी क्या खाक होना है, जो आँख से देखी न जा सके, ज़बान से चखी न जा सके और हथेली से सहलाई न जा सके। कोठे ने उसे दूसरी शादी के पाप से बचा लिया। दरोगा की लाठी आजकल ख़ूब वजन से चलती थी।

सत्रह साल का एक छोकरा मर्दानगी खरीदने आता था क्योंकि वो उचक कर मर्दानगी समय से पहले पा लेना चाहता था। वो संडे के रंगायन अख़बार की तस्वीरों, चुटकुलों और अपना-हाथ-जगन्नाथ से ऊब चुका था। कहता था कि दुनिया जिस रफ़्तार से भाग रही है, उस रफ़्तार से नहीं भागोगे तो पीछे के लोग तुमको केंचुए की तरह 'पिच्चा' करके निकल जाएँगे। ज़माना मॉडर्न नहीं होता, लोगों को मॉडर्न होना पड़ता है। एक बार उसने मुझे मोबाइल फ़ोन दिलाकर 'मिस यू डियर' मैसेज किया था। उस रात मैंने उससे पैसा नहीं लिया।

एक बुढ़ा बस बातें खरीदने आता था, क्योंकि इस उमर में उससे कोई बात करना पसंद नहीं करता था। ज़्यादा-से-ज़्यादा कोई अगले त्यौहार की तारीख़ पूछ लेता था या फिर ये पूछ लेता था कि गठिया के लिए कौन-सी दवाई सबसे कारगर है। वो कैलेंडर और हकीम से बढ़कर बहुत कुछ और होना चाहता था। रात भर के लिए ही सही, वो मेरे सामने कभी कहानी-वाला-बाबा तो कभी बूझो-तो-जाने वाला मास्टर हो जाता था। मुझे उसे इसलिए निकालना पड़ता था क्योंकि वो कभी-कभी ज़्यादा ज़ज़्बाती होकर मेरा बाप बनने की कोशिश करने लगता था।

एक ऑटो वाला था जो डेली चालीस रुपये की दो पाव शराफ़त खरीदने आता था। कहता था कि मेरा कोठा न होता तो उसकी शराफ़त कब की दम तोड़ चुकी होती। दिन भर की सारी फ़्रस्ट्रेशन मुझ पर उतार लेने के बाद वो जब घर जाता तो हमेशा उसके चेहरे पर चार इंच की

मुस्कराहट होती। उसने अपनी बीवी को गाली देना भी छोड़ दिया था और थप्पड़ मारना भी। वो रोज़ उसे गरमागरम रोटियाँ बनाकर खिलाती थी और उस पीर बाबा को दुआएँ देती नहीं थकती थी जिसका गंडा उसने अपने पति के बाजू पर बाँधा था।

कभी-कभी मुझे लगता था मैं कितनी ताक़तवर हूँ। जैसे कि मुझे तरह-तरह के जादू आते हों। हाथ घुमाया तो लिफ़ाफ़े के अंदर से, हर बार अलग-अलग तरह के सामान निकल आएँ- मुर्गी का अंडा, खुद मुर्गी, उजले पँखों वाला कबूतर, बिना सर की लड़की, प्लास्टिक के फूलों का गुलदस्ता और न जाने क्या-क्या!

लेकिन फिर इंसानों के अलावा, कोठे पर वक्रत-बेवक्रत मनहूसियत भी आती थी।

शायद मुझे ये बताने के लिए कि बेवजह के मुग़ालते न पाले जाएँ। फ़िल्मों में दिखाई जाने वाली तवायफ़ें और होती हैं, असल ज़िंदगी की तवायफ़ें और।

अजीब बात ये है कि गाहे-बगाहे मनहूसियत ज़्यादातर ऐसे ही लोगों के भेस में आती थी जो 'और भी बहुत कुछ' में दिलचस्पी रखते थे। ऐसे लोग से मेरा मतलब है उस दरोगा से, उस सत्रह साल के छोकरे से, उस बुढ़े से और उस आटो वाले से। ज़्यादा आसान वो लोग होते थे जो इधर-उधर में यक़ीन नहीं रखते थे। जिनका चेहरा झक्क सफ़ेद होता था। भावशून्य। भावशून्य चेहरा ऐसा चेहरा होता है, जिस पर कुछ भी उकेरा नहीं जा सकता, और उकेर भी दो तो उसे पढ़ा नहीं जा सकता। मुझे ऐसे ही चेहरे ज़्यादा पसंद आते थे क्योंकि ऐसे चेहरों में शीशे की तरह अपना चेहरा नहीं दिखता। अटपटा-सा महसूस नहीं होता। ऐसे लोगों से कभी डर नहीं लगता था। ये बस आते थे, नाड़ा खोल कर पैजामा सरका देते थे और हाँफ़ लेने के बाद वापस चले जाते थे।

अगर बारीकी से देखा जाए तो कोठे पर आने वाले लोगों को दो जमातों में बाँटा जा सकता है- एक वो जो रोशनी जलाकर सेक्स करना पसंद करते हैं और दूसरे वो जो रोशनी बुझाकर 'करना' पसंद करते हैं। आप वेल एजुकेटेड हैं तो 'करना' कह लीजिए नहीं तो 'चोदना' कह लीजिए। दरोगा, लड़का, बुढ़ा और आटो वाला हमेशा रोशनी जलाए रखने की जिद करते थे। रोशनी के चलते उनके चेहरे में आईने की तरह मेरा चेहरा नुमायाँ हो जाता था। बाक़ी के लोग अँधेरे की फ़रमाइश करते थे ताकि मेरे चेहरे के आईने में उनका चेहरा नुमायाँ न हो। परछाईं न दिखे। अक्स न बने।

ये भी हो सकता है कि वो रोशनी में अपने नंगे शरीर को देखना नहीं चाहते हों। ज़्यादातर लोगों से अपना नंगा शरीर देखा नहीं जाता और मुझे इस बात पर बेहद हैरानगी हुआ करती थी। क्योंकि देखा जाए तो दुनिया में सबसे सुंदर वही चीज़ें होती हैं जो नंगी होती हैं। जैसे कि सेक्स यानी कि सम्भोग, जैसे कि सच्चाई, जैसे कि अभी-अभी पैदा हुआ बच्चा, जैसे कि फूल और आसमान। लेकिन फिर भी लोग नंगेपन को जहाँ देखते हैं उसे तुरंत ढक देने की कोशिश करने लगते हैं और हमारे दिमाग़ में ये घुसा दिया जाता है कि नंगापन वाहियात है और उसकी ख़्वाहिश करना और भी वाहियात। एक बच्चा पैदा होता है तो उसे तुरंत कपड़े से ढक दिया जाता है। कोई सच कहना चाहता है तो उसे ये हिदायत दी जाती है कि सच कड़वा होता है। उसे भी ढक दो। जो बात कपड़ों में कही जाए वो प्यार, कपड़े उतार कर कही जाए वो वासना और

हवस। मुझे ये सब बातें कभी समझ नहीं आईं। हो सकता है कि ये मेरी समझ के बाहर रही हों क्योंकि मैं एक मामूली-सी तवायफ़ हूँ। लेकिन फ़र्ज़ करो कि एक दिन अचानक आसमान और सूरज निक्कर पहन कर निकल आएँ तो, कैसा लगेगा? फूल भी बरमूडा पहन कर क्यारी में उगे, तो वो कैसा दिखेगा?

इस तरह के सवालों का कोई आसान जवाब नहीं होता और हर किसी सवाल का ठीक-ठीक एक जवाब हो भी, ऐसा ज़रूरी नहीं होता। हर सवाल के तमाम जवाब हो सकते हैं, तरह-तरह के लोग, तरह-तरह के जवाब। जिसका जो जवाब मानने का दिल करे, उसी को माने।

एक दिन एक ऐसा ग्राहक मेरे कोठे पर आया जिसका दिया हर एक जवाब, मान लेने को जी करता था। लेकिन ये मनहूसियत का सबसे पहला संकेत था, इसलिए उससे डर भी बहुत लगता था। उसका चेहरा भावशून्य नहीं था। उसके चेहरे में आईने की तरह अपना चेहरा भी दिख जाता था। ये दूसरा संकेत था। वो कमरे में रोशनी जलाए रखना पसंद तो करता था लेकिन उसे सेक्स में कोई दिलचस्पी नहीं थी। ये था मनहूसियत का तीसरा संकेत।

इन साहब का पहले-पहल कोठे पर आना, तब की बात है जब मुझे कोठे पर आए हुए कुल दो साल और सात महीने हो चुके थे। इतना समय गणित सीखने के लिए काफ़ी होता है। उस दिन मैं कुल-मिलाकर तीन कस्टमर निपटा चुकी थी और चौथे के मूड में क़तई नहीं थी। मैं बत्ती बुझाने के बाद बिस्तर पर औंधे होने के लिए ऐसे मुखातिब हुई थी जैसे तालाब में मरा हुआ आदमी खोजने के लिए कोई गोताखार डुबकी लगाता है। लेकिन बिस्तर पर गिरने से पहले, यमराज के फ़रमान की तरह दिलावर ने दरवाज़े पर दस्तक दी और कुंडी की दस्तक ने मुझे ऐसे लपक लिया जैसे कोई मछली बगुले के चोंच में लपक ली गई हो। कुंडी खटकाने के अंदाज़ से पता चलता था कि दिलावर ही है, तीन जोड़ी खट-खट और दो जोड़ी ठक-ठक। खट-खट और ठक-ठक के बीच में बलगम सुड़ुकने की आवाज़। “आ रही हूँ दल्ले।” मैंने मरी हुई आवाज़ में कहा। मैं उसे दिलावर नहीं दलाल ही कहती थी क्योंकि मैं नाम पर काम को तरज़ीह देना पसंद करती हूँ। जवाब में उसने कहा- “जल्दी खोल रंडी, देख तेरे लिए स्विस बैंक लाया हूँ।” मैंने दरवाज़ा खोला तो स्विस बैंक एक छह फुट और दो इंच लंबे, गोरे-चिट्टे लड़के की शक्ल में खड़ा था। उसकी शक्ल के आईने में मेरा चेहरा झलक रहा था।

मैंने डरकर कहा- “मैं थक गई हूँ दल्ले, बस अब आज और नहीं हो पाएगा। बग़ल के कमरों में देख ले, कोई और चूल्हा मिल जाएगा सेंकने के लिए।”

दल्ले ने कहा- “तुझसे तेरी रज़ामंदी किसने माँगी है रंडी? ज़्यादा भाव मत खा और चुपचाप चित्रहार शुरू कर। और खाली सेवेंटीज़ नहीं चाहिए, दो हज़ार दस माँगता है आज।”

लड़का सकपका गया। शायद वो चित्रहार की शुरुआत में पल्स-पोलियो का विज्ञापन नहीं देखना चाहता था। आवाज़ मज़बूत करते हुए उसने कहा- “रहने दीजिए, अगर इनकी इच्छा नहीं है तो फिर कभी। ऐसे ज़बरदस्ती नहीं चलेगा। लड़की है। कोई बंधुआ मज़दूर तो है नहीं कि जब जी किया, हाँक लिया जाए।”

मैंने कहा- “आने दो...आइए साहब...म्म...स्विस बैंक।”

“जी मुझे वैभव कहिए, बेहतर होगा।”

उस रात पहली बार मैंने काम को किनारे सरकाकर नाम को उठाने की कोशिश की और बिना विरोध किए उसे जवाब में ‘वैभव’ बुलाया। नहीं तो अभी तक मुझे ‘ओए बूढ़े’, ‘लड़के’, ‘दरोगा जी’, ‘मियाँ ऑटो वाले’, और ‘दल्ले’ जैसे संबोधनों से ज़्यादा सहूलियत होती थी। हालाँकि मुझे मनहूसियत की वापसी का अंदेशा-सा हुआ तो लेकिन मैंने उसे दरकिनार करना बेहतर समझा। मैंने खुद को समझाया कि रंडी के घर ऐसे कौन से जवाहरात गड़े होते हैं कि हवाई बातों से सशंकित हुआ जाए। हाँ! ये ज़रूर था कि उसके आइने जैसे चेहरे में मुझे मेरा चेहरा दिखाई दे रहा था। लेकिन...छोड़िए भी...।

वैभव को अंदर छोड़ कर दल्ला वापस चला गया।

दल्ला मुझे हजार रुपये पकड़ा कर गया था लेकिन उस रात ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जैसा कि पिछले दो साल सात महीने की हरेक रात को होता आया था। ये साहब रायटर निकले और इनका कहना था कि ये एक फ़िल्म लिख रहे हैं जिसके सिलसिले में इन्हें असली तवायफ़ों को असली तरीक़े से जानना ज़रूरी था। उन्हें सिर्फ़ बात करने में दिलचस्पी थी। साफ़-साफ़ कहा जाए तो सिर्फ़ मुझे जानने में। मुझे छूना भी उनके उसूलों के खिलाफ़ था। कम लफ़्ज़ों में कहा जाए तो वैभव एक अच्छा आदमी था और उसे मुझसे हमदर्दी थी। वो मुझे एक किताब की तरह पढ़ने आता था और कोठा उसके लिए एक स्कूल था।

उस रात हमने सिर्फ़ बातें कीं। बेशुमार बातें। उसे सुनना बहुत पसंद था और सुनने के बीच-बीच में वो अपनी बातें ‘फ़िल इन द ब्लैक्स की तरह’ सलीक़े से भर देता था। ब्लैक्स भरते वक़्त उसने कहा कि हमारे यहाँ तवायफ़ों के साथ हमेशा बहुत बुरा होता आया है जबकि बड़े-बड़े ‘इंटेलेक्चुअल्स’ ने तवायफ़ों के बारे में न सिर्फ़ हमदर्दी जताई है बल्कि बड़ी-भारी अच्छी बातें भी कही हैं (भगवान जाने ये इंटेलेक्चुअल्स कौन लोग होते हैं। वैसे उसने कहा था कि ये समझदार लोगों का ही एक तबक़ा होता है)। उसके हिसाब से अमरीका से ताल्लुक़ रखने वाले एक सज्जन का कहना था कि सेक्स, पैसे से ख़रीदी जा सकने वाली, सबसे ‘ख़ूबसूरत’, ‘नैचुरल’ और ‘संपूर्ण’ चीज़ है। एक और सज्जन का कहना था कि दुनिया में हर कोई, किसी-न-किसी वक़्त, एक तवायफ़ होता है। तब, जबकि वो अपनी बात समझाने के लिए उसे लाग-लपेटकर कहता है, तब, जबकि वो पैसे के लिए अपने दफ़्तर में अपने आत्मसम्मान और अपनी ख़ुददारी से समझौता करता है, तब, जबकि वो, वो होने की कोशिश करता है जो कि वो होता नहीं है और ऐसा ही कुछ-कुछ। मुझे इतना याद है कि उसके हिसाब से वो भी एक तवायफ़ था।

अमरीका के उन सिरफ़िरे सज्जन की ही तरह, एक और सिरफ़िरे आदमी का कहना था कि दुनिया में ज़्यादातर शादीशुदा औरतें एक तरीक़े से तवायफ़ें होती हैं। उनमें और कोठे पर बैठने वाली औरतों में बस इतना फ़र्क़ होता है कि हम सौ आदमियों के साथ सोती हैं और वो एक आदमी के साथ। बल्कि उसका तो कहना था कि हिंदुस्तान की शादीशुदा औरतों की हालत हमसे भी ज़्यादा गई-गुज़री होती है। यदि वो पढ़ी-लिखी न हों तब तो ख़ासकर। क्योंकि उनके शौहरों को हर रात उन्हें पैसा देने की फ़िक्र नहीं करनी पड़ती। जब नाड़ा खिसक गया समझो कोठे का दरवाज़ा खुल गया।

भगवान जाने वो ऐसी बक-बक क्यों करता था? और करता भी था तो 'अक्सर' क्यों करता था।

वो हर बार जानना चाहता था कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आई हूँ? यहाँ कैसे फँस गई? वगैरह-वगैरह। मैं हर बार तवायफ़ बनने की अलग-अलग कहानी कह देती थी और बात खत्म होते-होते उसका संजीदा चेहरा देखकर मेरी हँसी छूट जाया करती थी। वो समझ जाता था कि उसके साथ मज़ाक किया गया है और बच्चे-सी शक्ल बनाकर दूसरी ओर बैठ जाता था। मुझे उसे मनाना बहुत अच्छा लगता था और शायद उसे रूठना भी। इसी रूठने-मनाने के सिलसिले में मैंने कोठे पर आने की कहानी के बहुत सारे वर्ज़न तैयार कर लिए थे और उन्हें मैं मूड के हिसाब से बूढ़े, दरोगा, लड़के और ऑटो वाले को सुना दिया करती थी।

लड़के से मैंने कहा कि मैं कोठे पर अपनी खुशी से आई हूँ। पैसा कमाने का मन हर किसी का करता है। उसने कहा कि वो भी ऐसा ही सोचता है और उन दोनों की सोच कितनी मिलती-जुलती है। बूढ़े से मैंने कहा कि मैं बांग्लादेश से शादी करके लाई गई थी। मेरे दूल्हे ने शादी की रात के अगले ही दिन मुझे यहाँ छोड़ दिया था। मैं अपने भाई को हर रोज़ फ़ोन करके रोती रहती थी कि वो मुझे लेने आ जाए लेकिन वो मुझे यही कहता था कि ससुराल से लड़की को वापस मायके नहीं लाया जा सकता। ये ग़लत है। बूढ़ा उस रात बहुत गुमसुम पड़ा रहा। उस रात उसने मेरे मोबाइल फ़ोन में अपना नंबर डाल दिया और कहा कि मुझे कभी भी किसी चीज़ की ज़रूरत पड़े तो मैं सीधा उसे फ़ोन करूँ। बूढ़ा दुबारा कभी कोठे पर नहीं आया। पता नहीं क्यों।

ऑटो वाले को मैंने जब कहानी सुनाने की कोशिश की तो उसने मुझे सिगरेट से जला दिया। मैंने कहानियाँ सुनाना बंद कर दिया। मेरी छाती पर चकत्ता पड़ गया था।

वैभव को इस बात पर अचंभा हुआ कि मुझे कोई सिगरेट से कैसे जला सकता है। वो ये नहीं जानता था कि फ़िल्मों की तवायफ़ों और असल ज़िंदगी की तवायफ़ों में कितना अंतर होता है। उसके दिमाग़ में तवायफ़ें पाकीज़ा की मीना कुमारी, देवदास की माधुरी और उमराव जान की रेखा की तरह होती थीं। इसी हिसाब से वो सब-की-सब 'सोने जैसे दिल' वाली होती थीं (हार्ट ऑफ़ गोल्ड, जैसा कुछ कहा था उसने)। पाक। जानशीं। जितना हो सके मैं उसके मुग़ालते बचाकर रखने की कोशिश करती थी। उन्हें तोड़ने का क्या फ़ायदा! लेकिन कभी-कभी इस बात का बुरा लगता था कि अगर उसके मुग़ालते नहीं तोड़े गए तो एक दिन वो भी कमाल अमरोही, मुज़फ़्फ़र अली या फिर भंसाली बन कर दुनिया को वो तवायफ़ दिखाएगा जो कभी हुआ ही नहीं करतीं। असल में न तवायफ़ें होती हैं, न ही वेश्याएँ। असल में सिर्फ़ रंडियाँ होती हैं। इसी तरह, असल में न ही कोठे होते हैं, न ही वेश्याघर। असल में सिर्फ़ नालियाँ होती हैं। नालियाँ इस लिए बनाई जाती हैं ताकि घरों की गंदगी उफ़न-उफ़न कर शरीफ़ लोगों के आँगन में न फैल जाए। असल में सिर्फ़ गटर होते हैं। ताकि समाज साफ़-सुथरा दिखाई दे और जितना हो सके, चमकता रहे।

लेकिन धीरे-धीरे वैभव को नालियाँ और गटर साफ़-साफ़ नुमायाँ होने लगे थे और शायद इसी से उपजी हमदर्दी के चलते उसे ऐसा लगने लगा था कि उसे मुझसे इश्क हो गया है। हालाँकि उसे लगता था कि इसका हमदर्दी से कुछ लेना-देना नहीं है। पहले वो सुनता ज़्यादा था।

फिर वो कहने ज़्यादा लगा। बहुत-सी बातें ऐसी भी कहता था जो कि वो कभी हिचक, कभी लिहाज़ तो कभी शर्म की वजह से किसी और से नहीं कह सकता था। रंडियों से शर्म कोई करे भी तो क्या। कहता था कि उसे चिड़ियों से खासा लगाव है, वो घंटों बालकनी में बैठा चिड़ियों की परवाज़ देखा करता था। कहता था कि ज़रूर तुम पिछले जन्म में कोई चिड़िया रही होगी, इसीलिए मेरा दिल तुम्हारी चोंच में चुगने की तरह अटक गया। बल्कि तुम अभी भी एक चिड़िया हो। कहता था कि कोठे के बाहर की दुनिया, कोठे के अंदर की दुनिया से कहीं ज़्यादा गई-गुज़री है। वहाँ कोई किसी का हिसाब साफ़ नहीं रखता। यहाँ कम-से-कम बहीखाता तो दुरुस्त रहता है, रसीद बराबर मिलती है, ठगाई नहीं होती। कोठा दुनिया की अकेली बची ईमानदार जगह है। फिर एक दिन यूँ ही बातों-बातों में बोला-

“एक चुटकुला सुनोगी?”

“हाँ! सुनूँगी।”

“तो सुनो, दिल थाम कर बैठिए और सुनिए, दुनिया का सबसे छोटा और मज़ेदार चुटकुला।”

“इंसान।”

“चुटकुला खत्म और अब हँसो। हा हा हा हा हा।” हँसते-हँसते वो बिस्तर से नीचे गिर पड़ा। भगवान जाने किस बात पर। जब वो हँसता था तो एकदम ऐसा लगता था कि कोई बच्चा किसी बहुत मामूली-सी बात पर बुक्का फाड़ के लोट रहा हो क्योंकि उसे ऐसी ही बात पर हँसने की आदत है और उसे पता है कि ये बात कितनी ज़्यादा हँसी की बात है और क्योंकि उसे ये भी पता है कि और किसी को चुटकुला समझ नहीं आने वाला। ये चुटकुला उसकी कोई बहुत बड़ी खोज या ईज़ाद है जो बस अभी-अभी निकल आई है।

दल्ला (दिलावर) हमेशा हिदायत देता था कि वैभव एक दिन उससे ज़्यादा नुकसान कर के चला जाएगा जितना कि उसने नफ़ा नहीं किया। दल्ला कहता था कि ये साले रायटर लोग घने चूतिया होते हैं। कुछ और चोदा जाता नहीं है तो कलम से बस कागज़ चोदा करते हैं। जिससे कुछ नहीं बना जाता वो रायटर बन जाता है। बंबई में ऐसे रायटर दिन के छत्तीस आते हैं और बहत्तर लौट जाते हैं, अपना मुँह उठाकर। इनकी ज़िंदगी निकल जाती है चाँद का चूतड़ घिसते-घिसते। कभी कहेंगे कि तू चाँद नहीं चंदा मामा है, कभी कहेंगे कि तू चाँद नहीं किसी की लुगाई की बिंदी है, तो कभी कहेंगे कि ऐ चाँद! तू चाँद नहीं आसमान का एक सफ़ेद सुराख है। मैं कहता हूँ अबे साले, एक दिन खुद चाँद आसमान से चिल्ला कर गरियाएगा कि चूतिये कम-से-कम रात के बखत तो सो लेने दिया करो। कोई काम धंधा नहीं है क्या?

वैभव क्या लिखता था, नहीं पता। उसने कभी मुझे कुछ पढ़ाया भी नहीं। लेकिन उसकी बातों से लगता था कि यही सब अगर सफ़ेद कागज़ पर बिछा दिया जाए तो और भी सुंदर लगता होगा। वो कहने को तो कोठे पर फ़िल्म के सिलसिले में आया था लेकिन यहाँ आना-जाना शुरू करने के कुछ ही दिन बाद उसका फ़िल्म-विल्म छूट-सा गया। छूटा कि छोड़ा गया, ये नहीं पता।

बहुत पूछने पर उसने एक दिन कहा कि उसने फ़िल्म डब्बे में डाल दी क्योंकि वो नहीं चाहता था कि वो मुझे चर्चा का विषय बनाए और मुझे बेचे। अजीब बात ये है कि खुद को बेचना

ही तो मेरा रोज़गार था फिर भी वो ऐसा सोचता था। ख़ैर उसने अपनी फ़िल्म तो बंद कर दी थी लेकिन उसके आने पर हमारे दरमयाँ कोई-न-कोई फ़िल्म उपजना शुरू हो जाती थी। और फ़िल्म नहीं तो फ़िल्म के किरदार उपज आते थे। मैंने लाख कोशिशें की, कि मैं कभी मीना कुमारी, माधुरी या रेखा न बनूँ, लेकिन वो कभी शाहरुख़ खान, कभी फ़ाहरुख़ शेख़ तो कभी राज कुमार बनने पर ऐसा अड़ा हुआ था कि थक-हार कर मुझे भी वो बनना पड़ता था जो मैं कभी नहीं बनना चाहती थी।

दल्ला कहता था- “फ़िल्में अच्छे-भले इंसान का नास मार देती हैं। मेरा बाप हीरो बनने बंबई भागा था और लौटा तो ‘चूँ-चूँ का मुरब्बा’ बन कर। उसको देख कर लगता ही नहीं था कि वो एक आदमी है। वो कभी ओमपुरी की तरह बात करता था, कभी अमरीश पुरी, कभी रंजीत तो कभी प्राण की तरह। एक दिन माँ ने ललीता पवार बन के उसे घर से बाहर निकाल दिया। सारी हेकड़ी निकल गई। ठीक हो गया साला। साली एक दिन तू भी कहीं की नहीं रहेगी। इन फ़िल्म वालों से दूर रहा कर।”

इसी फ़िल्मी सिलसिले में एक रात वैभव ने पहली बार एकदम ग़ैर-फ़िल्मी तरीक़े से मुझे चूम लिया। माथे पर। ये एक ऐसा चुंबन था जैसे कि पहली बार किसी बच्चे ने स्लेट पर खड़िया से ‘क’ से कबूतर या ‘ख’ से खरगोश लिखा हो। मैं मुस्कुराई जैसे कि मास्टर जी ने बच्चे की स्लेट पर ‘वेरी गुड’ लिखा हो। लेकिन वो सकपका गया और ऐसे दूर हट गया जैसे कि उसने ग़लत स्पेलिंग लिख दी हो और मास्टर ने ग़लत स्पेलिंग पकड़ ली हो। वो अपराधबोध में दूसरी ओर मुँह करके गठरी की तरह सिकुड़ कर बैठ गया।

ऐसा पहले भी हुआ था। होता रहता था। तब, जब कभी ग़लती से उसका हाथ मेरी छाती से छू जाता था। तब, जबकि वो कमरे में दाखिल हो और मैंने सलीक़े से कपड़े न पहन रखे हों। तब, जबकि मैं उसे हसरत से नज़र भर देखूँ और तब, जबकि मैं उसका मिजाज़ नापने को अपना पल्लू कंधे से गिरा दूँ। हर मौक़े वो मुँह फेर लेता था। अजीब बात थी। अजीब से ज़्यादा चिढ़ाने वाली। और चिढ़ाने से ज़्यादा पके-पकाए कोढ़ में खुजली करने वाली।

उस दिन मैंने उसे ताक़त से वापस अपनी ओर खींचा। अब फ़िल्म अगर चली है तो क्लाइमैक्स तक भी पहुँचे- “क्यों साहब? मुझमें काँटे लगे हैं क्या? पूरा शहर घूम आओगे तो भी मुझसे सुंदर रंडी ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगी। यहाँ पाँच रुपये वाली भी ढेरों बैठी हैं। मजाल है किसी की, जो मेरा दाम तीन सौ रुपये से कम लगा दे! फिर भी तुमने आज तक मुझे हाथ नहीं लगाया।”

“भगवान के लिए अपने को रंडी मत कहा करो। मैं तुमसे प्यार करता हूँ। अगर मैं भी तुम्हें बिस्तर पर ले जाकर पटक दूँगा तो फिर मेरा और तुम्हारा रिश्ता भी बस एक रंडी और उसके ग्राहक जैसा ही रह जाएगा। फिर मुझमें और यहाँ आने वाले हर दूसरे आदमी में क्या ही फ़र्क़ रह जाएगा? मैं तुमसे प्यार करता हूँ और उससे भी बढ़कर तुम्हारी इज़ज़त करता हूँ। हम अगर यहाँ तक चले आए हैं तो इसकी वजह यही है कि हम वो नहीं हो गए जो बाक़ी सब हैं।”

“मुझे बाक़ी सब ही होना है। मुझे तुम्हारी फ़िल्म में दफ़न होकर अमर नहीं होना है। बेहतर

होगा तुम मुझे निचोड़ कर मार दो। कम-से-कम मेरा गुमान तो रख लो। एक रंडी से वो भी छीन लो तो उसके होने पर थू है। तुम्हारे आने से पहले कम-से-कम इस बात पर गुमान था कि मैं कितनी ताक़तवर हूँ। तभी तो ये बीवियों वाले शरीफ़ लोग रंडियों के पास आते हैं। गुमान था कि मैं कोई जादूगरनी हूँ। कि मुझे तरह-तरह के जादू आते हैं। हाथ घुमाया तो लिफ़ाफ़े के अंदर से, हर बार अलग-अलग तरह के सामान निकल आएँ- मुर्गी का अंडा, खुद मुर्गी, उजले पँखों वाला कबूतर, बिना सर की लड़की, प्लास्टिक के फूलों का गुलदस्ता और न जाने क्या क्या।”

“ऐसी गलीज़ बातें मत करो। हर एक रिश्ते को उसका मुक़म्मल अंजाम देना कोई ज़रूरी तो नहीं है। पागल मत बनो।”

“मेरा और आपका कोई रिश्ता है ही नहीं साहब। बेहतर होता अगर ये कम-से-कम एक ग्राहक और रंडी का ही रिश्ता होता। लेकिन मेरे शरीर से घिन आती है आपको।”

मैं बस बड़बड़ा रही थी और बावलों की तरह बड़बड़ाते हुए, चाहते हुए भी उसे सुन नहीं पा रही थी- “और क्या साहब, हाथ भी छूते हो तो ऐसे जैसे कि चिमटे से कोई केंचुआ या कॉकरोच उठा रहे हो।”

मैंने कंधे से साड़ी का पल्लू निकाल फेंका। झीने-सफ़ेद ब्लाउज़ के बटन गहरी साँसों के साथ टूटने को होते थे। बटन को फूलती छाती के साथ कशमकश-तकल्लुफ़ करने देने के बजाय मैंने ब्लाउज़ को उधेड़ कर, घाव की सूखी-खाल की तरह नोच फेंका। उसने मुँह घुमा लिया। मैंने उसे वापस अपनी ओर खींचा और उसका चेहरा अपनी छाती से चिपटा लिया, जैसे कि वो उसका एक हिस्सा था और उसे वहीं होना चाहिए था, जहाँ से उसका बरसों पुराना ताल्लुक़ है। लेकिन वो छिटक गया, जैसे कि उसको साँस आना बंद हो गई हो।

मैंने साड़ी उतार फेंकी और पेटीकोट का नाड़ा खींच दिया। नंगा शरीर और भी नंगा होकर उसपे झपटने के लिए उतारू था।

“मैंने कहा ना, मुझे शर्मिंदा न करो।”

“मैंने कहा दूर हट।”

वो ज़ोर से चिल्लाया। और मुझे ज़ोर से दूर झटक कर उसने कमरे के सारे बल्ब जला दिए। मैं जमीन पर गिर पड़ी थी और वो कोने में सिकुड़ कर काँप रहा था। मेरे चेहरे में उसका चेहरा दिख रहा था और उसके चेहरे में मेरा चेहरा। वो अपना चेहरा देख कर काँप उठा और मैं अपना चेहरा देखकर। उसके चेहरे के आईने में मेरा नंगा शरीर कितना घिनौना दिख रहा था। चीखते हुए मैंने बल्ब बुझा दिया।

वो चला गया।

और जिस अंदाज़ से वो कमरे से निकला था उससे साफ़ था कि वो दुबारा कभी वापिस नहीं आने वाला है।

किवाड़ पर वापस से ठक-ठक हुई। तीन जोड़ी खट-खट और दो जोड़ी ठक-ठक। खट-खट



और ठक-ठक के बीच में बलगम सुझुकने की आवाज़। दल्ला ही था।

“वो रोता हुए क्यों बाहर गया?”

“तू भी रो रही है?”

“साला लड़का होकर लड़की माफ़िक रोता था। मैंने पहले ही कहा था ये साले रायटर लोग घने चूतिया होते हैं। कुछ और चोदा जाता नहीं है तो कलम से बस काग़ज़ चोदा करते हैं। हा हा हा हा। ख़ैर छोड़ ये सब, अभी दस मिनट में नया ग्राहक लेकर आऊँगा। तैयार हो जा।

चित्रहार चालू कर।”

## पीली पेंसिल

प्रोफ़ेसर सनल और उनकी पत्नी मंजरी कुछ पंद्रह दिन पहले ट्रांसफ़र लेकर यूनीवर्सिटी आए थे। अभी तक यूनीवर्सिटी के दिए अपार्टमेंट में शिफ़्टिंग का काम चालू था। मंजरी ने पहली बार घर बदला था, या ये कह लें कि घर के बदले, मकान बदला था। इतने दिन निकल गए लेकिन अभी तक अलग-अलग सामान और नए-नए कमरों का नाता कुछ मज़ेदार तरीक़े से बन नहीं पा रहा था। कभी बाँस की कुर्सियाँ आँगन में खिसका दी जाती थीं तो कभी बैठकी में। बेड कभी दीवार से पैरेलल सटा दिया जाता था तो कभी परपेंडीकुलर। लेकिन फिर भी सामान, दीवारों, दराज़ों और रहने वालों का एक ऐसा 'सेलेस्टियल कॉम्बिनेशन' नहीं बन पाया था जिसे घर कहा जा सके और उसे रात में निहारते हुए आँखों को ठंडा-ठंडा महसूस हो। महाकुंभ की गृह-दशा का 'अलाइनमेंट' भले आसान हो लेकिन इस घर में वैसा हो पाना बड़ा भारी प्रतीत होता था। प्रोफ़ेसर साहब इस बात से हैरान तो थे लेकिन वो अच्छी तरह जानते थे कि उनका स्पेशलाइजेशन सिर्फ़ भौतिक विज्ञान है और अगर श्रीमती जी के गृह विज्ञान में घुसने की कोशिश की, तो ट्रेसपासर्स को बेदर्दी से प्रोसीक्यूट कर दिया जाएगा।

इन दोनों के अलावा मकान में एक और प्राणी था जो इस उठा-पटक से बेहद नाखुश था। नाम- काकू। उम्र- दस साल। नाखुशी की सबसे बड़ी वजह यह थी कि उसकी खेलकूद के सामान वाला गत्ते का डिब्बा अभी तक खोला नहीं गया था। शायद वो किसी और गत्ते के नीचे दबे होने की वजह से गुमशुदा हो गया था या फिर वो गत्ता इतना ज़रूरी नहीं था कि उसे खोजने के लिए समय और मेहनत ज़ाया की जाए। समय के साथ जूझने-उलझने के लिए उसके पास ले-दे कर उसकी एक लाल रंग की डायरी और पीले रंग की पेंसिल ही थी। डायरी लिखने का शौक़ पिता से आया था। प्रोफ़ेसर साहब हर रात टेबल लैंप की रोशनी में संजीदा होकर डायरी लिखते थे और ऐसा करते वक़्त मुँह-ही-मुँह में कुछ बोलते रहते थे। पिता की देखा-देखी काकू ने भी डायरी लिखना शुरू करके उससे एक चोखा रिश्ता जोड़ लिया था और डायरी ने काकू से। अपनी डायरी का भी नाम उसने काकू ही रखा था। ऐसा करने से उसे ये लगता था कि वो खुद से बातें कर सकता है। पिछली रात उसने डैडू की तरह बुदबुदाते हुए टाइगर को याद किया और टूटी-फूटी भाषा में लिखा-

"ईंटों के घर में दबकर, टाइगर मर गया। टाइगर हेवेन जाएगा। टाइगर झूठ नहीं बोलत था। टाइगर को बोलना ही नहीं आता। टाइगर बस भौं-भौं करत था। भौं-भौं करने से झूठ नहीं बोलते ना। झूठ बोलने के लिए इंग्लिश-हिंदी बोलते हैं। टाइगर कभी चोरी भी नहीं की। क्योंकि टाइगर के पास टू-हैंड्स नहीं होता है। टाइगर का चार पैर थी। पैर से चोरी नहीं की सकती। आई नो टाइगर का घर वाचमन ने तोड़ा। लेकिन मैं पुलिस को मर्डर की बात नहीं बता सकता। क्योंकि फिर पोलीस वाचमान को फाँसी दे देगी। मे गाड ब्लेस टाइगर। काकू मिस यू लोड। आई..."।

आखिरी लाइन पर 'आई' के आगे की बात एक जोड़ी आँसुओं से धुल कर धुँधली हो गई थी। कुछ देर बाद काकू ने ये सोच कर पन्ना फाड़ दिया कि अगर खुदा-न-ख्वास्ता, किसी ने ये बात पढ़ कर पोलीस को कुछ बता दिया तो वॉचमैन को फाँसी पर चढ़ा दिया जाएगा और उसके बीवी-बच्चे अनाथ हो जाएँगे। ऐसा होते हुए उसने फ़िल्म में देखा था। वॉचमैन के बच्चों के साथ खेल-खेल कर काकू बड़ा हुआ था।

डायरी के पन्नों पर सिर रखकर काकू सो गया। कहते हैं कि सोने से पहले दिमाग़ जिन बातों में उलझा होता है, रात में वही सब सपनों के रूप में वापस आता है। काकू ने सपना देखा कि वो रेत के ढेर पर टाइगर के साथ खेल रहा है। वो एक सुरंग बनाता है और टाइगर उसके एक छोर से दूसरे छोर आवा-जाही करता है। रेत की सुरंग धँस जाए तो भी दबने का डर नहीं रहता। टाइगर अपनी झबरीली पीठ और पेट झाड़ कर छोटी-छोटी आँखों से मुलुर-मुलुर निहारता रहता है। काकू फूँक मार कर उसकी आँखों से रेत झाड़ देता है।

“काकू! उठ जाओ बच्चे। उठो तो, मैं बिस्तर झाड़ कर कमरा साफ़ कर देती हूँ। मेज़ पर पोहा बनाकर रख दिया है। खा लो जाकर और ये टेबल लैंप की रोशनी बंद करो बेटा”।

माँ ने खुद टेबल लैंप बंद किया, डायरी किनारे रखी और काकू का माथा चूम कर उसे बिस्तर से सीधे खड़ा कर दिया। नींद से काकू की आँखें भी नहीं खुल रही थीं। टाइगर की रेत भरी आँखों की तरह। माँ ने क़रीब आकर उसकी आँखों पर प्यार से फूँक मारी और वो मुस्कुराते हुए उनसे लिपट कर वापस सो गया।

“उठ जा बच्चे! सफ़ाई करनी है।”

काकू थोड़ी देर तक माँ की गोद में वैसे ही खेलता रहा जैसे रेत में टाइगर। फिर अकड़ा हुआ शरीर धनुष की तरह मोड़ कर सीधे मेज़ की तरफ़ ऐसे दौड़ा जैसे कि धनुष से निकलकर बाण छूटा हो।

“ईशश बाबा! बिना ब्रश किए खाने लगा। जाकर ब्रश कर बेटा!”

“....”

“काकू, दाँत में बड़े-बड़े कीड़े लग जाएँगे!”

काकू पोहा खा चुका था और सोफ़े से कूदा तो सीधे घर के बाहर मैदान जाकर रुका। मैदान में बंजारों के बच्चे खेलने-कूदने में मशगूल थे और बंजारन औरतें पत्तों के दोने बनाने में। काकू मैदान के इस तरफ़ था और बंजारों के बच्चे दूसरी तरफ़। वो उन्हें ऐसे देख रहा था जैसे एक भूखा इंसान मिठाई की दुकान को शीशे की दूसरी ओर से देखता हो। दुकान, जहाँ तमाम तरह की मिठाइयाँ क़रीने से सजी हुई हैं और शीशे को भेद कर उसकी महक फूट पड़ी हो। काकू एक ऐसे रिफ़्यूजी की तरह खड़ा था जो इस नए देश-गाँव-शहर में घुसकर घुल जाना चाहता था, उनके जैसा हो जाना चाहता था। लेकिन उसे इस बात पर संदेह था कि यहाँ के रहने वाले, घुसपैठिए के साथ कैसा बर्ताव करेंगे। वो शतरंज के घोड़े की तरह आगे बढ़ा- दो क़दम सीधे और एक क़दम दाहिने। फिर रुक गया। सामने से एक बच्चा शतरंज के पैदल सैनिक की तरह

बढ़ा- एक छोटा क़दम आगे। और वो भी रुक गया। उसके क़दम से हौसला पाकर काकू शतरंज के ऊँट की तरह तिरछा भागता हुआ सीधे उनके टोले तक जा पहुँचा। सामने वाले खेमे ने उसका पुरज़ोर स्वागत किया।

“ऐ! तुम लोग कौन-सा खेल खेल रहे हो?”

“चींटा।”

“हैं?”

“हाँ।”

“चींटा...माने?”

“चींटे को पकड़ के बीच से तोड़ देते हैं।”

“क्यों?”

“ऐसे ही...”

और फिर वो सारे-के-सारे ज़ोर से हँसे। काकू भी ज़ोर से हँसा। एक हँसी के धक्के से बहुत सारी हँसी की रेलगाड़ी चल पड़ी और वो सब उसमें सवार होकर मंदिर की तरफ़ भागे। एक मोटा बच्चा सबसे आगे-आगे भागता था, जिसका सिर्फ़ पेट मोटा था और बाक़ी का शरीर पतला। भागते समय उसकी चड़्डी सरकती थी। जब वो चड़्डी संभालने लगता था तो कोई और उससे आगे निकल जाता था। इस वजह से वो पूरी साँस भरकर तब तक दौड़ लगाता था जब तक कि उसकी चड़्डी वहाँ तक न सरक जाए, जहाँ तक सरकने से उसका कोई नुकसान न हो। फिर दम भर दौड़ लेने के बाद वो चड़्डी को नाभि के ऊपर तक खींच लेता था। इस होशियारी से वो अधिक देर तक बेहिसाब दौड़ लगा पाया और आख़िर तक सबसे आगे बना रहा।

मंदिर पहुँच कर वो सब, छोटे-छोटे, तीन चार के झुंड में अलग-अलग हो गए। थोड़ी देर एक-दूसरे से गुत्थम-गुत्थी करने के बाद किसी जोड़े के पास जाकर खड़े हो जाते थे और उसे तब तक नहीं छोड़ते थे जब तक कि वो उन्हें एक-दो रुपये नहीं दे देता था। ये एक नया खेल था। भीख माँगने का खेल।

“ऐ बीबी जी! जोड़ी सलामत रहेगी तुम्हारी! ऐ बीबी जी!... दो रुपये दो..”

“आइसक्रीम खिला दो..जोड़ी सलामत रहे!”

अधिकतर जोड़े उन्हें इस वजह से कुछ दे देते थे ताकि वो उन्हें तंग न करें और वहाँ से दफ़ा हो जाएँ और समझदारी इसी बात में थी भी। कुछ भी न देने पर ये बच्चे कुछ देर तो तरह-तरह की शक्त्तें बनाते थे और फिर जब ये बात साफ़ हो जाती थी कि यहाँ कुछ भी मिलने की कोई गुंजाइश नहीं है, तो नई सीखी हुई कोई गाली चिपकाकर भाग खड़े होते थे और वापस हँसी-खुशी अपने खेल में लग जाते थे। काकू समझ रहा था कि ये भी अपने तरीक़े का एक नया खेल है, जो उसे कभी खेलने को नहीं मिला। खेल मज़ेदार भी था, नियम आसान और उसके एवज़ में

मिलने वाला मेहनताना भी तगड़ा। सबसे बढ़िया बात ये थी कि ये खेल बाकी सारे खेल के इंटरवल्स में खेला जाता था। जब एक खेल से बोर हो गए तो थोड़े सिक्के बटोर लिए, नहीं तो गाली दे दी और फिर वापस हा-हा-ही-हू चालू।

काकू भी हिम्मत करके एक जोड़े की तरफ बढ़ा। हाथ आगे बढ़ाया। लेकिन शायद अपने हिस्से के डायलॉग भूल गया। या फिर घबराहट की वजह से गले की बात ज़बान तक नहीं कूद पाई। जोड़े की लड़की ने उसे ऐसे देखा जैसे उसने गणित का एक जटिल-सा सवाल देखा हो। काकू ने उसे ऐसे देखा जैसे उसने साक्षात गणित के मास्टर जी को देख लिया हो और वो फ़ौरन वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उसे डर था कि वो लड़की उसका पीछा करने वाली है, इसलिए वो बहुत दूर तक दौड़ा। जब उसने मुड़ कर देखा तो लड़की, लड़के के बालों से कुछ खिलवाड़ कर रही थी। उसकी जान-में-जान आई और वो मोटे लड़के के पास आकर खड़ा हो गया। मोटा लड़का अपनी चड्डी की इलास्टिक में गाँठ लगाने की कोशिश कर रहा था, जिससे वो थोड़ी टाइट हो जाए। काकू को पास खड़ा पाकर मोटा लड़का फिर हँसा। उसने अपनी मुट्ठी खोल कर काकू की ओर हाथ बढ़ाया। उसमें तीन रुपये थे। एक रुपये के दो सिक्के और दो अठन्नियाँ।

“किसने दिए?”

“ही ही...”

“हैं?”

“ही..ही..”

वो बोलता कम था। हँसता ज़्यादा था। हमेशा से ही इतना हँसता था या नहीं, इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं, लेकिन जब भी काकू को देखता था तो जी भर के हँसता था।

“तुम बोलते क्यों नहीं हो?”

“पोएम सुनाता हूँ।”

“पोएम?”

“हाँ।”

“किसने सिखाया?”

किसने सिखाया का जवाब दिए बिना वो पोएम गाने लगा- “आलू कचालू बेटा कहाँ गए थे, बंदर की झोपड़ी में सो रहे थे....” हर लाइन कहने के बाद ज़ोर से हँसता था और सड़क पर खुदे हुए किसी इमैज़िनरी बिंदु के चारों ओर ज़ोर से गोल-गोल घूम कर दौड़ लगाता। एक हाथ इलास्टिक पर और दूसरा हाथ मुद्राएँ बनाता हुआ।

“...बंदर ने लात मारी रो रहे थे...ही ही ही...मम्मी ने पैसा दिया, हँस रहे थे।”

पोएम कहते-कहते वो वापस मैदान की ओर दौड़ पड़ा और काकू अपने घर की ओर। काकू रास्ते में सोच रहा था कि वो जब अगले दिन खेलने आएगा तो पक्का मोटे लड़के को हरा कर ही

मानेगा। जब उसका गत्ते का डिब्बा मिल जाएगा तो वो अपना बैट लेकर आएगा और तब सारे लड़के भौंचक्के रह जाएँगे। कितना मज़ा आएगा! वो उनको क्रिकेट खेलना सिखाएगा और उन्हें, बदले में, उसे भीख माँगना सिखाना पड़ेगा। फिर वो ज़्यादा पैसे कमाकर उनको हरा सकता है। कमाए हुए पैसों से वो लकड़ी का घर बनवाएगा और उसमें नया कुत्ता रखेगा। लकड़ी के घर के गिरने का भी डर नहीं होगा।

घर आने के बाद शाम कुछ खास नहीं बीती। माँ घर की साफ़-सफ़ाई और बड़बड़ाने में व्यस्त थी और डैडू अपनी क़िताब में। फिर भी वो माँ के चारों ओर ऐसे घूम रहा था जैसे कुछ देर पहले मोटा लड़का पोएम सुनाते वक़्त गोल घूम रहा था। माँ के पास उसके सवालियों का जवाब देने का समय नहीं था।

“माँ जिन्न असली होता है? असली होता है ये तो मुझे पता है। लेकिन वो चिराग़ के अंदर कैसे घुस जाता है?”

“भूत ‘ओम्’ लिखी ताबीज से डर के क्यों भाग जाता है?”

“अच्छा चुड़ैल के पैर का पंजा पीछे की तरफ़ होता है तो वो दौड़ती कैसे है? आगे दौड़ने के लिए उसे पीछे की तरफ़ भागना पड़ता है?”

“भीख माँगना पाप है? माँ, नदी किनारे साँप है?”

वो पूरे घर में दौड़ लगाने लगा- “भीख माँगना पाप है नदी किनारे साँप है। ...भीख माँगना पाप है नदी किनारे साँप है।...भीख माँगना...” जैसे कि मुनादी करके कोई बहुत ज़रूरी सूचना पूरे गाँव वालों को सुनाई जा रही हो। लेकिन गाँव वाले थे कि मुनादी वाले की तरफ़ ध्यान ही नहीं दे रहे थे। वो अपनी ढोलक की थाप और बुलंद करता। गाँव वाले अपने कान पर लगी ‘ठेपी’ और गहरे ठूँस लेते।

थोड़ी देर में मुनादी वाला निराश हो गया। उसने अपना गत्ते का डिब्बा खोजने की कोशिश की लेकिन ढाक के तीन पात। परेशान होकर वो अपनी डायरी लेकर बैठा और अपनी कहानी पूरी करने लगा-

## जॉस फिनांडो और शरीफ़ डागो

“एक बार जॉस फिनांडो ने पागल कुत्तों को डागो का ख़त्म करने लिए भेजा। लेकिन डागो जब कुत्तों को देखा तो उसने कहा, ही ही ही पागल कुत्तों तुमको शायद पत नहीं कि डागो अपने हाथ से जहरीले गैस छोड़त है और ऐसा कहकर उसने सबको जहरीले गैस से मार दिया। उसके पास जहरीली गैस, बम निकालने वाली मशीन गन और जादुई शक्ति थी। जादू से उसका शरीर लोहे का बन जात था। वह सचमुच शक्तिशाली था इसीलिए पागल कुत्तों को मार दिया। उसकी तलवार भी शक्तिशाली थी। उसके शहर में सब उसे शक्तिशीली डागो कहकर बुलाते थे। उसने जादूगर तबाका को भी धूल मार चटाया था। महाबली फौलाद भी डागो से हार गया। इसके लिए उसको पागल कुत्तों को मारना मुश्किल नहीं था। वह पागल कुत्तों को मारा तो उसके साथ क्या

हुआ? अगर ये जानना है तो अगला पेज अवश्य पढ़ें।

अगले पेज पर है- जॉस फिनांडो और शरीफ़ डागो का इंतकाम।”

काकू को नींद नहीं आ रही थी। वो बिस्तर पर दाएँ से बाएँ ऐसे करवट ले रहा था जैसे बिना पेंदी का लोटा उँगली से छू देने पर नाचता फिरता हो। तमाम तरह के खयाल उँगली का काम कर रहे थे, कूल्हे लोटे की पेंदी का। जैसे ही कोई खयाल उसे कूल्हों पर छू देता था तो वो दूसरी करवट घूम जाता था। कभी जॉस फिनांडो आकर उसे छेड़ता, कभी मोटा लड़का, कभी तबाका तो कभी टाइगर। दिमाग़ में बड़ी सारी बातें कूद-फाँद लगा रही थीं।

काकू को देखकर कहीं-न-कहीं इस बात पर भरोसा हो जाता था कि दूर आसमान में ज़रूर कोई कारसाज़ है जो इतने दिलकश बच्चे अपने हाथ से बनाता है। इस बात पर यकीन करने का दिल नहीं करता था कि ये बच्चे भी ज़ाहिल से ‘बिग-बैंग’ का नतीजा हैं। मतलब आप खुद सोचें कि कुछ उल्का-फुल्का आपस में टकराएँ, बड़ी भारी आग पैदा हो, फिर गैसों ठंडी हों और उससे अमीबा-प्रोटोजोआ बनें। बाद में वही मेंढक-मछली बन जाएँ, फिर ज़मीन पर चलने वाला स्तनधारी-मैमल, भगवान जाने क्या-क्या और फिर आखिर में इंसान। इंसान जो काकू जितना दिलकश भी हो सकता है। क्या काकू के पूर्वज ऐसे ही उगे होंगे? उल्का-फुल्का जब टकराई होंगी तो उनको रक्ती भर अंदाज़ा रहा होगा कि एक दिन उनसे ये इंसानी बच्चे जन्म लेंगे? मुझे नहीं मालूम। बस बात की ही बात है।

लेकिन सच बात ज़रूर है कि भले ही आपकी आस्था को ब्यूबॉनिक प्लेग जैसी जहरीली चीज़ ने ही क्यों न डस लिया हो लेकिन इन दिलकश बच्चों को देखकर आपकी ख्वाहिशें और भरोसे वापस सेहतमंद और बुलंद हो जाते हैं। जब किसी ने ऐसा कहा था- ‘घर से मस्जिद है बड़ी दूर, चलो ये किया जाए...किसी रोते हुए बच्चे को हँसाया जाए’, तो उसके दिमाग़ में भी इसी तरह की तमाम बातें चल रही होंगी। उसके मौजूद खयालों का सिलसिला तभी टूटा होगा जब उसने किसी बच्चे को बड़े होकर हमारे जैसा इंसान बनते हुए देख लिया होगा। दिल टूट गया होगा बेचारे का। यकीन करना मुश्किल होता होगा। नहीं?

खैर...

काकू अभी भी नींद के आगे-पीछे भाग रहा था लेकिन नींद आज काकू से खफ़ा-खफ़ा थी। थक-हार कर काकू, माँ और डैडू के कमरे चला गया। बिस्तर पर माँ और डैडू थे। माँ डैडू के नीचे थीं। डैडू माँ के ऊपर। माँ के ‘कराहने’ की आवाज़ आ रही थी। ऐसा आसानी से समझा जा सकता था कि माँ और डैडू हाथापाई कर रहे थे। दोनों जीतने की कोशिश में पसीना-पसीना हो रहे थे। डैडू माँ से भी ज़्यादा पसीने से सराबोर थे, शायद इसीलिए डैडू जीत रहे थे और माँ हारकर नीचे दब गई थी।

काकू ने सोचा- “क्या माँ और डैडू झगड़ा कर रहे हैं?”

“दोनों के शरीर पर कपड़े भी नहीं थे।”

“लेकिन माँ और डैडू झगड़ा क्यों कर रहे होंगे?”

“दोनों की सुबह घर के सामान को लेकर बहस हुई थी।”

“लेकिन माँ और डैडू ने पहले तो कभी झगड़ा नहीं किया?”

“माँ कराह भी तो रही थी।”

“हाँ! फिर तो शायद झगड़ा ही था?”

“तभी तो तुरंत डैडू ने काकू को देखकर माँ को छोड़ दिया और माँ घबराई-सी दौड़ पड़ी। उसने जाकर तुरंत कपड़े पहने और डैडू भी शर्मिंदा हो गए। जैसे गलती पकड़ी गई हो।”

मिनट भर के अंदर उसका शरीर तप रहा था और वो जड़ होकर खड़ा था। ठीक वैसे ही जैसे स्कूल में झूठ पकड़े जाने पर टीचर के सामने काकू की घिगी बँध जाती थी। ठीक ऐसा ही उसे एक बार तब महसूस हुआ था जब उसने टाइगर को ईंटों के ढेर में दबा हुआ देखा था। ऐसा एक बार और भी महसूस हुआ था जब उसने बिल्डिंग के बेसमेंट में भूत देखा था। भूत काकू को देखकर डर गया था क्योंकि काकू ने ओम् की ताबीज पहनी थी। डैडू भी वैसे ही डर गए थे। माँ डैडू के नीचे उसी तरह फँसी हुई लग रही थी जैसे ईंटों के ढेर के नीचे टाइगर फँसा हुआ दिख रहा था। डैडू लाल रंग की ईंट की तरह ही लाल दिखाई दे रहे थे।

माँ ने काकू को समझाने की कोशिश की लेकिन उसे समझ नहीं आ रहा था कि वो काकू को ‘क्या’ और ‘कैसे’ समझाएगी। माँ ने काकू को सोने के लिए बिस्तर पर लिटा दिया और वो कुछ देर तक उसके पास बैठी रही लेकिन वो बोलती कुछ न थी। काकू ने पूछा-

“माँ तू ठीक है?”

“हाँ बेटा। तू सो जा...मैं... मैं ठीक हूँ तू सो जा...”

“डैडू तुमसे झगड़ा क्यों कर रहे थे माँ? तुमको लगी तो नहीं माँ?”

“वो झगड़ा नहीं कर रहे थे मेरे बच्चे... तू सो जा मेरे बच्चे....”

“झूठ बोल रही हो।”

“अरे मैं झूठ क्यों बोलूँगी?”

“तुमको चोट लग गई होगी...”

“नहीं देख न...कहीं चोट नहीं लगी है।...ये देख....सब एकदम चमाचम है। मेरा बाबू!”

ऐसा कहकर माँ ने हल्का-सा मुस्कुराने की कोशिश की लेकिन जब उसकी मुस्कुराहट उसके होंठों से चलकर काकू के होंठों तक नहीं पहुँची तो वो, कुछ देर बाद बुझे मन से शर्मिंदा होकर अपने कमरे में वापस चली गई। उसे लगा कि काकू सो गया है या शायद उसे ये मान लेना ज़्यादा बेहतर जान पड़ा कि काकू सो गया है। वापस कमरे में जाकर उसने प्रोफ़ेसर साहब से कहा- “घबराइए नहीं। बच्चा है। भूल जाएगा।” प्रोफ़ेसर साहब भी क्या ही कहते। उनकी हालत वैसे ही हो गई थी जैसे भूत ने सीने पे बँधा ताबीज़ देख लिया हो।



इधर काकू किसी से बात करना चाहता था। वो बताने के लिए जो उसकी ज़िंदगी में पहली बार हुआ था। काकू वापस अपनी डायरी खोल कर बैठ गया और उसकी पीली पेंसिल डायरी को वो सब कुछ बताने की कोशिश करने लगी जो वो शायद किसी और को नहीं बताएगा-

“काकू! तुम्हें पता है?...काकू...आज माँ और डैडू फइट कर रहे थे। मुझे देखकर माँ-डैडू ने फइट बंद कर दिया और कपड़े पहनने लगे। माँ-डैडू कभी फइट नहीं करते। डैडू माँ से गुस्सा क्यों हुए? डैडू खुद मुझे गुड हाबिट सिखाते हैं। वी मस्ट लव। वी शुड नेबर फइट।

माँ घर का सामान ठीक करने से आजकल जल्दी गुस्सा हो जाती है। डैडू माँ की हेल्प नहीं करते। डैडू माँ से सुबह कहे कि वो पहले उनकी किताबों की डब्बा खोल कर दें। माँ कहती कि पहले रसोई का सामान सेट होगी। आई नो, इसे बात पर ही फइट हुई। लेकिन इस बात पर ऐसे फइट नहीं करना चाहिए। अब मैं डैडू से कभी बात नहीं करूँगा। डैडू जॉस फिनांडो की तरह बुरे आदमी हैं।

मैं अपने खिलौने का डब्बा निकालने के लिए भी अब माँ से जिद नहीं करूँगा। आई विल प्ले आउट टू गाउंड। बट दे आलसो फइट लाइक माँ एंड डैडू ...व्हाट आई डू नाऊ?

डैडू वाज़ माई सुपरमैन। अब मैं डैडू से हेट करता हूँ। आई लव माँ। डैडू ने माँ को झगड़ा किया फिर भी माँ मुझे मनाने के लिए आई। माँ तुम बहुत प्यारी हो। डैडू अगर फिर कभी तुम माँ झगड़ा किये तो मैं तुमसे बदला लूँगा। शरीफ डागो ने जोस फिनांडो से बदला लेकर उसको हरा दिया था और उसको अंतरीच में फेंक दिया था। फिनांडो अंतरीच में अर्थ के चारों ओर घूमता रहता है। जो आदमी अंतरीच चला जाता है वो कभी अर्थ पर वापस नहीं आ पता है। डैडू को भी मैं अंतरीच भेज दूँगा।

लेकिन डैडू तो सुपरमैन हैं। डैडू कहीं से भी वापस आ सकते हैं।

फिर मैं क्या करूँगा?

इंतकाम मुश्किल हो सकता है।”

काकू ने अपनी पीली पेंसिल रख दी और डैडू से बदला लेने के तमाम तरीके सोचते-सोचते डायरी का पन्ना पलट दिया। पन्ना पलट देने से पिछला पन्ना उसके बगल वाले पन्ने और अगले पन्ने के बीच दब गया, जिससे काकू को थोड़ा बेहतर महसूस हुआ। नया पन्ना एकदम सफ़ेद था और उस पर उतनी ही जगह थी जितनी कि घर के सामने वाले मैदान पर, जहाँ बंजारों के बच्चे खेलते रहते हैं। काकू ने उस पर नई हेडिंग डाली और उसे पेंसिल से अंडरलाइन कर दिया-

जॉस फिनांडो और शरीफ डागो का इंतकाम

# टोपाज़

## 1.

मैं अपनी ज़िंदगी में जितने भी लोगों से मिला हूँ केशव ठाकुर उन सबमें सबसे ज़्यादा विचित्र, अजीब और संजीदा क्रिस्म का इंसान था। हालाँकि केशव मेरी बात को मानेगा नहीं क्योंकि उसके हिसाब से इस दुनिया का सबसे विचित्र इंसान गुड्डू था। केशव और मेरा नाता बस इतना था कि मैं उसकी क़िताबें छापता था और वो मेरे लिए क़िताबें लिखता था। इस वक़्त मेरे हाथ में केशव की आखिरी क़िताब का ड्राफ़्ट है जिसके पहले पन्ने पर केशव ने लिखा हुआ है-

‘मेरी आखिरी क़िताब, गुड्डू और जैसमिन के लिए’

केशव की ये क़िताब (जो कि अगर छापी जा सकी तो) उसकी पिछली सारी क़िताबों से बहुत अलग होगी। ये क़िताब, क़िताब कम डायरी ज़्यादा है, डायरी कम रैंडमनेस ज़्यादा है और रैंडमनेस कम केयौस ज़्यादा है। लेकिन मैं जितना देख पाता हूँ, ये सारा डिसऑर्डर पता नहीं कैसे ऑर्गेनाइज़ होकर एक पुख़्ता शक्ल ले लेता है। ये वैसी क़िताब नहीं है जैसी मैं अमूमन छापता आया हूँ। ये उसकी पुरानी क़िताबों के जॉनर से कोसों दूर है। वैसे तो उसकी पुरानी सारी क़िताबें, उसके शब्दों में, कुल-मिलाकर ‘दो कौड़ी का साहित्य’ थीं, लेकिन पब्लिशर और बिज़नेसमैन होने के नाते मैं उसकी बात से इत्तफ़ाक नहीं रखता क्योंकि केशव हिंदुस्तान का सबसे ज़्यादा बिकने वाला लेखक था। ये अलग बात है कि केशव ठाकुर की क़िताबें सिर्फ़ बस स्टॉप और रेलवे स्टेशन पर ही बिकती थीं। इंटेलेक्चुअल लोगों की ज़मात उसे ‘चीप’ कहती थी, लेकिन संख्या में उन्हें पसंद करने वाले लोग बहुतेरे थे।

केशव एक पेसिमिस्ट था। ज़्यादातर इंसानों को पसंद नहीं कर पाता था। जब हम उसकी पिछली क़िताब ‘छुरी माँगे इंसाफ़, चाकू की नोक पर’ के छपने के बाद शाम में रॉयल स्टैग की महफ़िल जमाए बैठे थे तो कुछ देर बाद, हर बार की तरह वैसी ही बातें शुरू हो गयीं, जैसी दारू की टेबल पर नहीं होनी चाहिए। सात पेग डाउन होने के बाद उसने यूँ ही मुझसे पूछा, “टिक्कू मियाँ! एक सवाल का जवाब बताओ।”

“ज़िंदगी ज़्यादा हसीन होती है या मौत?”

“ज़िंदगी”- मैंने कहा।

“अरे धत्त! तुम भी न टिक्कू मियाँ। मौत बेशक ज़िंदगी से कहीं ज़्यादा हसीन होती है। कभी टोपाज़ के ब्लेड को अपनी कलाई पर रख कर देखना। ऐसा लगता है जैसे शीरी से मिलने फ़रहाद आ गया हो।”

“यार अब फिर से मत चालू हो जाओ। कम-से-कम दारू की टेबल पर अपने पेसिमिज़्म को कुछ देर के लिए फुरसत दे दो यार।”

“अरे हम सच कह रहे हैं टिक्कू मियाँ। साला सब लोग शान से जीने के बारे में सोचते हैं। हैरानी की बात ये है कि आज तक कोई शान से मरने की प्लानिंग किया ही नहीं। जबकि ये बात तो सब लोग मानते हैं कि ज़िंदगी का आखिरी सच, पड़ाव और डेस्टिनी मौत ही है।”

“अमा मियाँ! बस भी करो ये निराशावाद, अभी तो आधी बोतल बची हुई है।”

“निराशावाद? हा हा हा... टिक्कू मियाँ, एक वक़्त था जब हम भी आशावाद को अपनी छाती पर ताबीज़ की तरह लटकाकर घूमते थे। हौसला हमारी छाती पर 786 की तरह छपा रहता था। जब हम पंद्रह साल के थे तो अपना घर और बिहार छोड़ कर यहाँ, मुंबई आ गए थे। हमको रायटर बनना था। रायटर....। अपने चौदहवें जन्मदिन पर हमने खुद से वादा किया था कि मरने से पहले हज़ार-हज़ार किताबें ज़रूर पढ़ डालेंगे। सत्ताईस की उम्र में मरने से तमाम-तमाम साल पहले हमने अपना प्रण पूरा कर भी लिया। लेकिन जानते हो इतना पढ़-पढ़कर हमने क्या जाना समझा? ‘One of the very first signs of the beginning of understanding is a wish to die’ एक भले आदमी ने कहा था। कबीर, काफ़का, दोस्तोवस्की और नीशे जैसे लोगों को हमने जितना पढ़ा, हमारा भरोसा पक्का होता गया कि साला मरने की इच्छा, समझदारी की पहली निशानी है। यह ऐसा संसार है, जैसे सेमल फूल, ब्रह्म सत्यम जगत् मिथ्या और सबसे बड़ी मिथ्या बात खुद ब्रह्म, ब्रह्म यानी कि भ्रम, भ्रम यानी कि झूठ। कैप्स लॉक, कैपिटल लेटर्स में भ्रम।”

“यार, कम-से-कम भगवान को तो न कोसो” - मैंने तौबा के अंदाज़ में कहा।

“ठीक है टिक्कू मियाँ, साला हम भी कहाँ संजीदा हो लिए। यहाँ आधी बोतल बची हुई है और हमको फ़िलॉसफ़ी का औचक दौरा आ पड़ा। बनाओ यार तुम अगला पेग बनाओ। यदि रॉयल स्टैग हमसे नाराज़ हो गई तो बड़ी भारी समस्या हो जाएगी।”

“चियर्स...”

“चियर्स टू अरिंदम चौधरी, चियर्स टू बॉबी देयोल, चियर्स टू शिव खेड़ा।”

## 2.

यह किताब / डायरी ज़्यादातर वक़्त गुड्डू के बारे में बात करती है और बीच-बीच में कुछ ऊलजुलूल फ़िलॉसफ़ी और स्क्रिबलिंग। मुझे याद है गुड्डू पहली बार उसी रात आया था जब हम रॉयल स्टैग की बाँहों में सुकून से सुरक्षित पड़े थे। केशव ने पिज़्ज़ा ऑर्डर किया था और गुड्डू वही डिलीवर करने केशव के मकान पर आया था। गुड्डू ने किसी फ़िल्मी अंदाज़ में एंट्री नहीं मारी थी, वो एक सीधे-साधे, सुलझे इंसान की तरह दाखिल हुआ।

“सर! दिस इस यॉर पीज़ा, सम ओरगानो..हियर आर सम चिली फ्लेक्स...म्म...एंड दिस इस

यॉर बिल सर"- गुड्डू ने एक साँस में कहा।

"बिहार से आए हो?" हैरान केशव ने बिना साँस गटके कहा।

"नो, सॉरी सर! बिहार से नहीं, मलाड से। मलाड मुंबई। वो ऐक्चुली में लेट इसलिए हो गया था क्योंकि ट्रैफ़िक में फँस गया था।"

"अरे देरी की वजह से नहीं कह रहे हैं राजा! ये जो तुम्हारी फ़र्जी अंग्रेज़ी से पटना, समस्तीपुर, मधेपुरा और सासाराम टपक-टपक के गिर रहा है न एक्स्ट्रा चीज़ की तरह, उसी से हम समझ लिए हैं कि तुम बिहार से हो। बोलो, हो ना बिहार से?"

"जी सर!"

"अमाँ मियाँ! छोड़ो ये सर, श्रीमान और श्रीमती को। आज बहुत दिनों के बाद अपने देस का कोई बाशिंदा आया है। आओ तुमको दारू पिलाते हैं।"

"नो सर, आई हैव सम आर्डर्स टू डिलीवर"- गुड्डू ने आग्रह करते हुए कहा। ऐसा आसानी से माना जा सकता है कि उसे कभी भी किसी ने पिज्ज़ा डिलीवर करने के बदले में दारू का न्यौता नहीं दिया होगा। केशव उसकी कमीज़ का कोना पकड़ कर उसे दारू की टेबल की तरफ़ हौले-हौले घसीट रहा था लेकिन गुड्डू भी मंथर-मंथर उतनी दूरी वापस खिसक लेता था जितना केशव उसे घसीट चुका होता था।

"अबे छोड़ो यार, एक-आधा दिन ये डिलीवरी नहीं करोगे तो कौन-सा बंबई में अकाल पड़ जाएगा! वैसे भी यहाँ सब माँ-के-बेटे खा-खा के गुलुआ चुके हैं। एक दिन एक्स्ट्रा चीज़ वाला मालपुआ नहीं खाएँगे तो उन्हीं का भला होगा। छोड़ो... बैठ कर दारू पीते हैं और बैठ कर 'सर' मनोज तिवारी और गुड्डू रंगीला सुनते हैं... क्या बोलते हो?"

"लेकिन सर...हमारा जॉब भी चला जाएगा न! नौकरी से निकाल देंगे हमको। 'क्वालिटी एंड टाइमलीनेस इज़ अवर कमिटमेंट' ऐसा कहते हैं।"

"ओहो...जॉब चला जाएगा! ये ब्यवस्था।" केशव ने गुड्डू के कंधे पर हाथ रखकर हैरानी से कहा- "...फिर तो बड़ी गंभीर बात है यार। जॉब नहीं जानी चाहिए। जाओ तुम निकलो। लेकिन हम फिर बुलाएँगे तुमको, हमें बात करनी है तुमसे। फ़ोन करके पिज्ज़ा मँगाएँगे तो तुमको आना ही पड़ेगा। है कि नहीं?"

"जी!" गुड्डू ने नई बहू की तरह शरमाते हुए कहा।

"वैसे कितना देते हैं तुमको ये लोग?"

"जी चार हज़ार।" इस बार गुड्डू ने फ़क्र, शान, और गर्व के सम्मिश्रण से कहा।

"चार हज़ार! बस! इतने में अंडरवियर भी धुला जाता है तुम्हारा?"

गुड्डू को बुरा नहीं लगा। वो अभी तक उसी फ़क्र-गर्व-शान वाले मोड से बाहर नहीं निकला था। "हाँ! बिल्कुल धुल जाता है। बल्कि हम हज़ार रुपये बचाकर गाँव भी भेज देते हैं और अब

तो अम्मा भी खुश रहने लगी हैं कि हम काम पे लग लिए।”

“अरे यार! देखो बुरा न मानना लेकिन ये तुम्हारे माँ-बाबूजी थोड़े बिचित्र नहीं हैं? बस हज़ार रुपैया घर भेजते हो और यहाँ लबर-लबर करके अंग्रेज़ी बोलते हो। इतने में खुश हो जाते हैं?”

“हाँ!”

“हाँ मतलब! अपने माँ-बाबूजी को बिचित्र बोलते हो।”

“नहीं..हम तो ये बोले कि वो इतने में खुश हो जाते हैं।”

इस बार केशव ने ज़ोर लगाकर गुड्डू को घसीटकर राउंड चेयर पर बिठा ही दिया और उसे दो चक्कर गोल घुमाते हुआ कहा- “मेरे भाई! ये दुनिया बड़ी बिचित्र है। नो बडी डाइज़ अ वर्जिन...लाइफ़...फ़क्स अस ऑल...सुने हो कि नहीं?”

“जी?” गुड्डू राउंड टेबल पर गोल-गोल घूम रहा था और हॉफ गया था।

“हाँ!”

“हैं?”

“अबे हाँ बे!” केशव को लगा कि वो किस अनाड़ी इंसान को समझाने के चक्कर में उलझ रहा है, “छोड़ो यार! तुमको ये सब बात फुरसत में समझाना पड़ेगा। जब तुमको दारू पीने के लिए बुलाएँगे तब आ ज़रूर जाना, नहीं तो डॉमिनोज़ वालों को फ़ोन करके कह देंगे कि तुम्हारा एम्प्लॉई बत्तमीजी कर रहा था और उसका न तो क्वालिटी के लिए कमिटमेंट है और न ही टाइमलीनेस के लिए।”

“सर! हम दारू नहीं पिएँगे।” गुड्डू ने मेलोड्रामा से भरी आवाज़ में कहा।

केशव ने गुस्से में कहा- “अरे बोला न जब फुरसत में होंगे तभी बुलाएँगे तुमको।”

“सर! वो बात नहीं है। हम लोगों को दारू नहीं पीना चाहिए। दारू पीना स्वास्थ्य और मिजाज़ दोनों के लिए हानिकारक होता है। दारू पीकर इंसान की सोचने-समझने की शक्ति कमज़ोर हो जाती है और वो कुछ भी कर सकता है। जैसे अपनी बीवी को पीट सकता है, गाली-गलौज कर सकता है, तोड़-फोड़ कर सकता है....”- गुड्डू एक साँस में बोले जा रहा था और अगर केशव की खिलखिलाहट की ज़ोरदार आवाज़ उसकी भावनाओं का मज़ाक बनाती हुई उसे बीच में नहीं रोकती तो शायद भावातिरेक में बोलते-बोलते उसकी साँस ही अटक जाती। केशव हँसते-हँसते ज़मीन पर गिरा पड़ा था। हँस रहा था, खाँस रहा था। जब खाँस लेता था तो हँस लेता था और जब हँस लेता था तो खाँस लेता था।

“जाओ....हा हा हा....तुम जाओ भाई...हमारे सोचने-समझने की शक्ति खो रही है...हा हा हा....और हम पागल हुए जा रहे हैं...हा हा हा...अब हम अपनी बीवी को पीटेंगे...हा हा हा...तुम जाओ मेरे भाई...जाओ...पिज्ज़ा डिलीवर करके आओ...दुबारा फिर हँसाना। लेकिन इतना ज़ोर से न हँसाना...हा हा हा...ज़रा हौले से हँसाना।”

गुड्डू अपना-सा मुँह लेकर बाहर चला गया। वो शायद यही सोच रहा था कि उसने ऐसी कौन-सी हँसी की बात कह दी जिससे केशव का पेट फटने की क़गार पर आ गया था। लेकिन वो अभी भी औफेंड कम हुआ था और हैरान ज़्यादा। वो कमरे से एक भोला-सा सवाल लेकर बाहर निकला था, अपमान या हल्की-फुल्की बेइज्जती लेकर क़तई नहीं।

### 3.

अपनी डायरी में केशव ने प्यार का ज़िक्र रह-रह कर किया है। वो कहता था कि हम इंसानों के लिए 'प्यार' हमेशा से एक हैज़ान मचा देना वाला सब्जेक्ट रहा है। वो अक्सर एक जानकार आदमी की प्यार के बारे में कही हुई बात 'कोट' करता था - "People were hermaphrodites until God split them in two, and now all the halves wander the world over seeking one another. Love is the longing for the half of ourselves we have lost."

केशव ने जैसमिन के बारे में ऐसा कुछ भी महसूस नहीं किया। इसलिए वो ठीक-ठीक दावे के साथ नहीं कह सकता कि उसे जैसमिन से प्यार-इश्क-मोहब्बत था या फिर नहीं। हाँ! अगर आप केशव और जैसमिन के रिश्ते के बारे में जानना ही चाहते हैं तो पिछले कई सालों में इतनी बड़ी दुनिया में केशव के लिए एकमात्र 'रिलीफ़' और 'सोलेस' जैसमिन ही रही। हालाँकि, वो फिर भी इस रिश्ते को 'डबल कोट' या 'शुगर कोट' करके 'लव' नहीं कहना चाहता क्योंकि प्यार के बारे में लोगों के तरह-तरह के खयालात रहे हैं और उसे तरह-तरह के नज़रिए से देखा गया है। केमिकली प्यार सिर्फ़ हार्मोन्स की गुड़गुड़ है, शरारत है लेकिन वक़्त के साथ-साथ किसी ने प्यार को हुक्का बार कह दिया तो किसी ने इश्क-वाला-लव कह दिया। किसी ने उसे दिल्ली-की-सर्दी क़रार दिया, किसी ने अंधा, तो किसी ने ख़ुदा बता दिया। इसलिए केशव ने 'इश्क हुआ' को 'कैसे हुआ' के बजाय, 'जो भी हुआ, अच्छा हुआ' की तरह ही थाम लिया था।

चलिए, अब जब प्यार की बात चली ही है तो मैं आपको जैसमिन से मिलवाता हूँ। उस दिन गुड्डू के जाते-जाते जब जैसमिन कमरे में आई तो अब तक जिस कमरे में रॉयल स्टैग और सिगरेट के धुँए की मिली-जुली महक से दमघोटू माहौल हो रहा था (हालाँकि केशव इस माहौल को साईकेडेलिया कहेगा) वहाँ अचानक से सुकून दिलाने वाली भीनी-भीनी फ़ब्बत फैल गई। जैसमिन अक्सर रंग-बिरंगे बुलबुलों की तरह दाखिल होती थी, जो उड़ते-उड़ते, कब-कैसे छूकर तरावट बिखेरते हुए निकल जाएँ, कहना मुश्किल होता था।

गुड्डू को जाते हुए देखकर उसने यूँ ही पूछने के लिए पूछ दिया, "वो कौन था?"

"मनमोहन सिंह" केशव ने कहा।

"मनमोहन सिंह कौन है?"

"कांग्रेसी है, पिज्ज़ा बेचता है।"

"ओह... ओके... ओके...अरे हाँ, तुम्हारी नई कहानी पढ़ी। बहुत क्यूट है।"

ये समय का वो 'डेलिकेट प्वाइंट' था जब शायद केशव की दारू उतरने को थी। दारू का गिलास गले के नीचे खाली करते हुए उसने पूछा, "आपको हमारी कोई भी कहानी क्यूट के अलावा और कुछ नहीं लगती?"

उसने साठ प्रतिशत दुलार और चालीस प्रतिशत प्यार से कहा- "अरे क्यूट है तो मैंने बोल दी! तुम सच में बहुत क्यूट लिखते हो और हाँ! तुमने मिलन कुंदरा की जो किताब दी थी, वो भी पढ़ी, ही इज़ सिम्पली सूपर्ब।"

"एंड?" भौहों के किनारे से केशव ने पूछा।

"एंड व्हाट?" जैसमिन की पतली-पतली भौहों ने उचक कर पूछा।

"क्यूट नहीं लगा वो आपको?"

"बिलकुल...ही इज़ ऑसमली क्यूट!"

जैसमिन पूरे कमरे में इधर-से-उधर घूम रही थी। ऐसा करके उसे ये घर अपने जैसा लगने लगता था। दारू की खाली बोतलों और ऐश-ट्रे को डस्टबिन में खाली करने के बाद वो सोफ़े के हैंडल पर केशव के बग़ल में आकर बैठ गई और उसके बाल सहलाने लगी।

"मूवी देखोगे?" उसने पूछा।

"कौन-सी?" उसने बेमन से पूछा।

"ट्वाइलाइट" कहते-कहते उसकी आँखें चमक गईं।

"ओह प्लीज़!" कहते-कहते उसकी आँखें बुझ गईं।

"क्यों?"

"हमको नहीं देखनी।"

"बेबी प्लीज़!"

"ट्वाइलाइट एक निहायत ही घटिया और रिटार्डेड फ़िल्म है और वो दिमागी तौर पर अपंग लोगों के देखने के लिए बनाई गई है।"

"अच्छा तो चलो गुलाल देखते हैं"- जैसमिन ने नया आइडिया दिया, जैसे कि उसे पता था कि केशव उसे काट नहीं पाएगा। फिर भी केशव ने उसे ये कहते हुए काट दिया कि वो गुलाल उसके साथ दस बार देख चुका है। और क्या उसे किसी दूसरी अच्छी फ़िल्म का नहीं पता। जैसमिन चिढ़ गई। केशव को दुनिया में हर दूसरी चीज़ घटिया ही लगती है।

"जैसमिन रुको, मेरी बात सुनो!"

"क्या है?"

"तुम्हारी मम्मी तुमको दारू पीने के लिए मना करती हैं?"

“क्या मतलब?”

“मतलब, क्या तुम्हारी मम्मी तुमको दारू पीने के लिए मना करती हैं?”

“हाँ, तो?”

“और फिर भी तुम दारू पी लेती हो?”

“हाँ!”

“दारू पीना बुरी बात होती है जैसमिन! हम लोगों को दारू नहीं पीना चाहिए”- केशव एक बार फिर हँसते-हँसते ज़मीन पर गिर चुका था। “दारू पीना स्वास्थ्य और मिजाज़ दोनों के लिए हानिकारक होता है...हा हा हा...दारू पीकर इंसान की सोचने-समझने की शक्ति कमज़ोर हो जाती है और वो कुछ भी कर सकता है। जैसे अपनी बीवी को पीट सकता है, गाली-गलौज कर सकता है, तोड़-फोड़ कर सकता है।” जैसमिन पाँव पटकते हुए कमरे से बाहर चली गई। उसने एक-दो बार पलट कर रुकने की कोशिश की, इस उम्मीद में कि शायद केशव उसे रोकेगा, लेकिन केशव के लिए हँसी रोक पाना मुश्किल हो रहा था।

केशव की डायरी से गुज़रते वक़्त उसमें से ये नोट मिलता है, जो शायद उसके और जैसमिन के लिए हो सकता है। मेरा खयाल है कि केशव ‘ब’ है और जैसमिन ‘अ’। नोट कुछ ऐसा कहता है-

“उन दोनों ने ज़िंदगी की ‘बायोलॉजी’ तो समझ ली लेकिन ‘अलज़ब्रा’ में वे ख़ासे कच्चे थे। लड़की समीकरण के बाएँ हाथ पर एक वैरिएबल ‘अ’ थी और लड़का उसके दाहिने हाथ पर दूसरा वैरिएबल ‘ब’। दोनों को एक-दूसरे तक पहुँचने के लिए दो पैरेलल रेखाओं की लंबी-चौड़ी रेल की पटरी पार करनी थी।

‘अ’+‘स’=‘ब’

‘अ’ चाहती थी कि वो सदा-सदा के लिए ‘ब’ की हो जाए और ‘ब’ भी उसके चाहने से यकीनन इत्तफ़ाक़ रखता था। दोनों दीवानों की तरह एक-दूसरे को पाने के लिए ज़िंदगी भर उस चौड़ी पटरी पर हाँफते-दौड़ते भी रहे लेकिन फिर भी उनकी कोशिश कभी मुक़म्मल न हो सकी। क्योंकि न तो ‘अ’ खुद में कुछ-कुछ ‘ज़रूरी’ ‘स’ जोड़ने के लिए तैयार थी और न ही ‘ब’ खुद से कुछ-कुछ ‘ग़ैरज़रूरी’ ‘स’ घटाने के लिए तैयार हो सका।

ज़िंदगी में अलज़ब्रा की समझ बहुत ज़रूरी है क्योंकि अलज़ब्रा बहुत-सी बातें एक सरल से समीकरण के रूप में सिखा देती है। मज़ेदार बात ये है कि अलज़ब्रा ‘अगर’, ‘यदि’ और ‘मानो कि’ से शुरू तो होती है लेकिन ख़त्म ‘हेन्स प्रूव्ड’ पर ही होती है और ‘हेन्स प्रूव्ड’ तभी होता है जब एल.एच.एस. का मान आर.एच.एस. के बराबर हो जाता है।”

#### 4.

शायद अभी तक मैंने आपको थोड़ा उलझा दिया हो क्योंकि मैं बातें क्रम से एक लाइन में नहीं



कह रहा हूँ। मैं लेखक नहीं हूँ, मैं एक पब्लिशर हूँ और शायद मैं इकट्ठे बहुत कुछ कह देना चाहता हूँ। मैं अब थोड़ा क्रोनोलॉजी में बात कहता हूँ और आपको केशव से परिचित करवाता हूँ। फिर गुड्डू की बात होगी। इधर-उधर से बातें उठाकर ही कहूँगा, बीच-बीच में उसकी डायरी के हिस्से रखूँगा और उसमें लिखी केशव की ज़िंदगी के ब्यौरे से चुरा-चुराकर भी क्रिस्से रखूँगा लेकिन इत्मीनान रखिए, कहानी खत्म होते-होते आपको कोई शिकायत नहीं रहेगी और वो सारी बातें एक लाइन में जुड़कर कहानी बन जाएँगी।

केशव का पहला उपन्यास जो छपा था, उसका नाम था 'गुड़िया नाचे छम्मक-छम्मक'। मैं अब तक, कुल मिलाकर उसके सत्तावन उपन्यास छाप चुका हूँ और हर एक उपन्यास मिलियन कॉपी के ऊपर बिका। लेकिन मैं गारंटी देकर कह सकता हूँ कि आपमें से कोई उसे पहचानता नहीं होगा। क्योंकि आप इन्टेलिक्चुअल तबके से ताल्लुक रखते हैं और केशव के उपन्यास सिर्फ़ बस स्टेशन और रेलवे स्टेशनों पर बिकते हैं। उसके सारे उपन्यास रोमांचक होते हैं। साफ़ कहा जाए तो 'रोमांसक' होते हैं - रोमांस से भरपूर।

उदाहरण के तौर पर 'गुड़िया नाचे छम्मक-छम्मक' के पहले पन्ने का पहला पैराग्राफ़ कुछ ऐसा कहता है- "रोज़ी अपने नाम के ही अनुरूप थी। रोज़ की तरह। गुलाबी, मुलायम, कमसिन, छरहरी और डेलिकेट। लेकिन जैसे गुलाब कितना भी डेलिकेट हो, उसके साथ काँटे आते ही आते हैं, वैसे ही, रोज़ी को हैंडल करना किसी अनाड़ी माली के बस की बात नहीं थी। रोज़ी कहती थी कि उसे खुद माली को तड़पते हुए देखना अच्छा लगता था। तड़पाना उसका स्टाइल था। आज तड़पने की बारे में मिस्टर जैंगो की थी"।

ये केशव के लिखने का खास स्टाइल था जो मुझे और पाठकों को बहुत पसंद था। मैं केशव से हमेशा कहता था कि आजकल उपन्यास में ज्ञान और फ़िलॉसफ़ी कहे जाने की न तो ज़रूरत है और न ही किसी के पास उसे पचा पाने का वक़्त है। औकात से ज़्यादा खाने से बदहज़मी होती ही होती है। हमारा 'एपीटाईट' हलका-फुलका खाने का ही होता है, भारी खाने से फ़ालतू की बदबू पैदा होती है।

मैं जब भी ऐसी बात केशव के सामने रखता था तो केशव हत्थे से उखड़ जाता था। एक दफ़ा उसने चिढ़कर मुझसे कहा- "टिक्कू मियाँ! तुम हमको बेकार कर दिए हो। कचरा बना दिए तुम हमारा। तुम पैसा देकर कूड़ा खरीद ले जाते हो और बाज़ार में उसे महँगे दाम पर बेच आते हो। तुम पब्लिशर लोग कबाड़ी वाले होते हो टिक्कू मियाँ। अच्छा काम तुमको चाहिए ही नहीं।"

"तुमको क्या लगता है केशव, ये चेतन भगत इतना क्यों बिकता है?" - मैंने कहा।

"ये दो कौड़ी का साहित्य लिखने से पहले एक वक़्त था, जब हम भी साहब क्या ख़ूब लिखा करते थे। हम उन चंद लोगों में से थे जो फ़िलासफ़ी दारू पिए बिना भी कर लिया करते थे। लेकिन कोई उसे छापना चाहे तब ना।"

"तुमने मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया केशव! मैंने पूछा कि क्या लगता है केशव, ये चेतन भगत इतना क्यों बिकता होगा?"

"बिकता होगा। बिके मेरी बला से।"

“वो इसलिए बिकता है कि वो उस भाषा में बात करता है जो भाषा लोगों को समझ आती है। वो इसलिए भी बिकता है क्योंकि हम जब दिन भर, इधर-उधर लात खाकर घर वापस आते हैं तो हम किताब अपनी दिमागी चोटों और फ़ितूर को हल्का करने के लिए उठाते हैं, कोई फ़िलॉस्फ़र बनने के लिए नहीं।”

“दिमागी फ़ितूर को हल्का करने के लिए लिए करन जौहर, साजिद ख़ान, बालिका वधू और क्योंकि सास भी कभी बहू थी काफ़ी नहीं हैं?”

“नहीं। समय बदल गया है मेरे दोस्त! फ़िल्में और किताबें, लिटरेचर नहीं रह गई हैं बल्कि एक मार्केटिंग एक्सरसाइज़ हो गई हैं। अगर मार्केट में सौ में से नब्बे लोग कमअक्ल हैं और दस लोग ‘सेल्फ़ प्रोक्लेम्ड इंटेलेक्चुअल’। तो तुम उन नब्बे लोगों के लिए लिखोगे या दस लोगों के लिए? दस के लिए लिखोगे, तो उसमें से पाँच लोग खरीदेंगे और तीन को पसंद आएगी। दो लोग कह देंगे कि नमक कम है और तेल ज़्यादा। इससे अच्छा उन नब्बे लोगों के लिए लिखो। कचरा पढ़कर भी कम-से-कम पचास लोग कहेंगे कि ‘माशाअल्लाह! कितनी गहरी बात कह दी!’, ‘ओए होए! मज़ा ही आ गया साहब!’ और अगर अपने लिए ही लिखना है तो अपने पास ही लिखकर क्यों नहीं रख लेते हो? उसके छपने की परवाह ही न करो, लेकिन नहीं। फिर तुम लोगों को शोहरत भी चाहिए और नाम के साथ पैसा भी।”

“दाल रोटी के लिए तुमने हमको रंडी बना दिया टिक्कू मियाँ।”

“बाज़ार में आने की ख्वाहिश भी रखते हो और रंडी बनने से कुफ़्र भी खाते हो? रंडी नहीं बनना चाहते तो घर में बैठो न। तुम्हें जो हाई-फंडा-फ़िलॉसफी लिखनी है उसे लिख-लिखकर अपनी डायरियों में भरो और जो तुम मेरे लिए लिखते हो उसे बिना सोचे-समझे फटाफट लिखते जाओ। लाखों लोग हैं जो तुम्हारी लिखाई के कायल हैं। क्योंकि तुम्हारी किताबों में उन्हें वो खुद दिखाई दे जाते हैं, उनकी महबूबाएँ मिल जाती हैं और उनकी फ़्रैन्टेसी भी। अगर अपनी कीमत बढ़ा के लगाना नहीं जानते तो कम कर के भी न लगाओ। केशव ठाकुर लोगों का चहेता लेखक है। हिंदुस्तान का सबसे ज़्यादा बिकने वाला लेखक।”

“बिलकुल ठीक कहा आपने। हिंदुस्तान का सबसे ज़्यादा बिकने वाला लेखक।”

## 5.

केशव टोपाज़ का ब्लेड लेकर उसे अपने हाथ की कलाई के चारों ओर घुमा रहा था। पीछे ‘द डोर्स’ का ‘दिस इस दि एंड’ बज रहा था। वो ब्लेड को ऐसे घुमाता था जैसे एक म्यूजीशियन अपने ट्रूप को गाने का उतार-चढ़ाव समझाने के लिए रिदम में पतली-सी छड़ी घुमाता है। उसके ट्रूप की जगह, काँच के गिलास, मेज़ पर बैठे हुए, ब्लेड के इंस्ट्रक्शन देख-सुन रहे थे। केशव की कलाई उसकी अधूरी-सिंफनी थी जिस पर ब्लेड से आखिरी नोट्स लिखे जाने बाक़ी थे। शायद केशव अभी ‘मूड’ में नहीं था। सुसाइड करने के लिए एक सही मूड होना ज़रूरी है। पूरी-की-पूरी ज़िंदगी तो आधे-अधूरे मूड में जी जा सकती है लेकिन मौत आधे-अधूरे मूड में नहीं जी जा सकती। मौत का मुक़म्मल होना ज़रूरी है। इसलिए इरादा बदलकर उसने डॉमिनोज़ में फ़ोन

घुमाया लेकिन उसके कुछ बोलने से पहले ही सामने वाले ने एक साँस में नए वाले चीज़-बर्स्ट पिज्जा का पूरा-का-पूरा विज्ञापन बोल दिया।

“नहीं भाई, हमको एक्स्ट्रा चीज़ वाला पिज्जा नहीं चाहिए। तुम हमको भी तो कुछ बोलने दो, ये बताओ कि गुड्डू है?” केशव ने चिढ़कर कहा।

“जी?”

“अबे अपने मेन्यू में नहीं! अपनी दुकान में देखो। गुड्डू, गुड्डू ...पिज्जा डिलीवर करने आता है तुम्हारे यहाँ से। हमारे इधर हमेशा वही आता है डिलीवरी देने। उसको बुलाओ। हमको बात करनी है उससे।”

“सॉरी सर!”

“यार! तुम लोग ये सॉरी बहुत बोलते हो! और वो भी बंबई में! यहाँ छोटा-छोटा बच्चा लोग पैंट के नीचे से निक्कर उतार कर ले जाता है और खुद पैंट को भी पता नहीं चल पाता। हमारे पिज्जा का ऑर्डर ले लो और गुड्डू को उसके साथ भेज देना।”

गुड्डू अक्सर केशव से मिलने आ जाया करता था। कभी-कभी वो खुद आ जाता था तो कभी केशव उसे पिज्जा मँगाने के बहाने बुला लिया करता था। पहली मुलाकात में गुड्डू का बचपना और मासूमियत केशव को किशतों में तमाम सारी क्यूरियोसिटी दे गया था। अगली मुलाकातों में वो क्यूरियोसिटी धीरे-धीरे उम्मीद में तब्दील हो गई। केशव के कहने पर दिन की ड्यूटी खत्म करके गुड्डू आज फिर गैरफ़िल्मी अंदाज़ में कमरे में दाखिल हुआ।

“अरे आओ-आओ मेरे राजा! बैठो। आज बहुत दिन के बाद आए हो। बोलो ओल्ड मौँक पिलाएँ तुमको या फिर वैट पियोगे? बियर भी है।”

गुड्डू किसी वजह से शरमा रहा था। बोलने को हुआ तो उसे छींक आ गई।

“अबे बोलने में शरमाते काहे हो? अगर ओल्ड मौँक पीना है तो साफ़-साफ़ कह दो। विस्की की ज़रूरत बताने के लिए ये सर्दी-जुकाम का नाटक करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन तुम तो दारू पीते नहीं थे।”

“कभी-कभी पी लेते हैं।”

“अच्छा बेटा! फिर तुम्हारी सोचने-समझने की शक्ति कमज़ोर हो जाएगी और तुम यहाँ तोड़-फोड़ शुरू कर दोगे। और तुम्हारी बीबी तो है नहीं, इसलिए तुम हमको ही पीटना शुरू कर दोगे।”

“तुम इतने गुस्से में काहे रहते हो?”

“अरे हम गुस्से में कहाँ रहते हैं रजा! हम तो बेहद ही आशिक-मिजाज़ इंसान हैं।”

केशव ने अपने लिए बर्फ़ पर बिना पानी का ऑन-द-रॉक्स बनाया और गुड्डू के लिए ज़्यादा सोडा और कम दारू वाला पेग बनाया। गुड्डू ने पेग उठाया और एक घूंट सुड़क लिया।

“अबे तुम एकदम बकलोल इंसान हो क्या! पहले चियर्स किया जाता है बे! हमको क्या बार-टेंडर समझ लिए हो कि अपना पेग लेकर चलते बने।”

झेंपते हुए गुड्डू ने कहा- “चियर्स!”

“घंटा चियर्स! पेग वापस रखो! वापस से बराबर-बराबर पेग बनेगा...हम्म...ये लो..अब पियो।”

दोनों ने चियर्स कहने के बाद अपना-अपना पेग गले के नीचे किया।

“हम्म...अब तुम हमारे लेवल पर आए हो। अब तुमसे बात करने में मज़ा आएगा। दारू पीकर कैसे भी दो लोग एक लेवल पर हो जाते हैं। अमीर-ग़रीब, नेता-जनता, शिकार और कातिल, खुद और खुदा सब। खुदा से याद आया... गुड्डू तुम इश्क किए हो कभी?”

“हाँ! किए हैं”- गुड्डू ने इस तरह से शरमाते हुए कहा जैसे किसी छोटी लड़की से कह दिया गया है कि तुम एकदम परी जैसे प्यारी लग रही हो और वो शरमाकर दो चक्कर घूम गई हो।

“किससे किए हो मियाँ गुलफ़ाम?” केशव ने चुटकी लेते हुए पूछा।

“लड़की से”- गुड्डू ने ऐसे मटकते हुए कहा जैसे किसी ने नाभि के पास गुदगुदी कर दी हो।

“आई सबास! लड़की से इश्क किए हो। ग़ज़ब की बात है भाई! गुड्डू सिंह ने लड़की से इश्क किया है। बड़ी हार्दिक खुशी हुई जानकर।”

ऐसा अक्सर होता था कि गुड्डू को ये समझ नहीं आता था कि कब उसका मज़ाक उड़ाया जा रहा है और कब सच में उसकी तारीफ़ की जा रही है। उसने खुशी में दूसरा कम-दारु-ज़्यादा-सोडा पेग बनाया। वो उसे पीने ही जा रहा था कि उसे अचानक याद आया कि चियर्स करना है। चियर्स करते हुए उसने कहा-

“हाँ, हमारे गाँव की है।”

“तो फिर उससे मिलने-विलने जाते हो कि नहीं?”

“अभी साल भर के ऊपर हो गया है। थोड़ा पैसा-वैसा इकठ्ठा कर लें, फिर जाएँगे। ऐसे खाली हाथ जाना अच्छा नहीं लगेगा।”

“फ़ोन-वोन करते हो उसको कि नहीं?”

“अभी अपने लिए फ़ोन ख़रीदना है। एक लिए थे तो घर पे दे दिए हैं। अब एक तारीख़ को तनख़्वाह मिलेगा तो ख़रीदेंगे।”

केशव ने उसकी ठोड़ी को अंगूठे और उसके बग़ल वाली उँगली से हिलाते हुए कहा- “फ़ोन-वोन बराबर किया करो भाई, नहीं तो छोड़ देगी वो तुमको। और कल को उसी की शादी में नागिन-नाच नाचने का न्योता भी आ जाएगा तुमको। फिर मुँह में रूमाल फँसा के बीन बजाना और आँसू बहाना टप्प-टप्प।”

“क्यों?” बड़ी-बड़ी गोल-गोल आँखों से उसने पूछा।

“क्यों क्या बे! अब लड़की को टाइम नहीं दोगे तो वो तुमको छोड़ के तो चली ही जाएगी।”

“पागल हो का? ऐसे थोड़े ही होता है।”

“बिलकुल होता है। तीन लड़कियों ने हमको इसी बात के लिए छोड़ दिया था कि हम उनसे बात तो खूब करते थे लेकिन उनको समझते नहीं थे। फिर एक ने इसलिए छोड़ दिया था क्योंकि हमारे पास उसके लिए वक्त नहीं होता था और जब होता भी था तो हम उससे फ़िल्मों और कहानियों के बारे में ही बात करते रहते थे।”

“अमीर का प्यार और गरीब का प्यार एक बराबर थोड़े ही होता है।”

“एक बराबर नहीं होता मतलब?”- केशव ने लगभग छटपटाते हुए पूछा।

“बस नहीं होता।”

“अरे ऐसे कैसे नहीं होता? जब बोले हो तो कुछ लॉजिक तो होगा उसके पीछे कि बस आकासवाणी की तरह बोल के चल दिए। बतलाइए जरा एक बराबर कैसे नहीं होता?”

“बस नहीं होता।”

## 6.

गुड्डू अब केशव के साथ उसके ही घर में रहने लगा था। न कभी केशव ने उसे कहा कि तुम यहीं रहने लगे और न ही कभी गुड्डू ने उससे पूछा कि क्या मैं यहाँ रहने लगूँ? वो बस इधर रहने लगा। उसे यहाँ रहते हुए कुछ दो महीने हो गए थे। गुड्डू का यहाँ रहना बस ‘हो’ गया था। बहुत-सी बातें बस हो जाती हैं लेकिन उनके ‘कैसे होने’ का पता नहीं चलता क्योंकि वो बस हो गई थीं। जैसे सड़क के किनारे कोई पेड़ खड़ा हो गया हो तो ये बताना मुश्किल होता है कि ये पेड़ यहाँ पर कैसे आ गया। किसी ने जमाया होगा, बोया होगा, इससे हमें क्या। हमें इस बात से मतलब है कि पेड़ छाया दे रहा है या नहीं।

गुड्डू छाया दे रहा था। केशव जब भी अपने ‘सिनिसिज़म’ से झुलस खा कर बिलबिलाता हुआ घर वापस आता था तो गुड्डू का ‘आशावाद’ केशव के निराशावाद को छाया देता था। हालाँकि केशव, गुड्डू के आशावाद को कभी-कभी उसकी बेवकूफी और नासमझी मानता था लेकिन जब पेड़ छाया दे रहा था तो बीज, खाद और ब्लाह-ब्लाह का घंटा!

केशव ने अपनी डायरी में लिखा है कि गुड्डू उसकी ज़िंदगी में ‘लास्ट लीफ़’ वाली कहानी के आखिरी पत्ते की तरह आया था। जब बचपन में माँ ने उसे ये कहानी सुनाई थी तो केशव को हमेशा लगता था कि उसकी अरसे से बीमार माँ की ज़िंदगी में भी कोई लास्ट लीफ़ आएगी और वो फिर से अच्छी हो जाएगी लेकिन उसे हरा-भरा करने कोई लास्ट लीफ़ नहीं आई। माँ तो नहीं बच पाई फिर भी, बचपन में जब कभी वो किसी मुसीबत में होता था तो उसे लगता था कि शायद कोई लास्ट लीफ़ आकर उसे ज़रूर बचा लेगी।

माँ की सुनाई हुई कहानी एक लड़की के बारे में थी। लड़की हमेशा बीमार रहती थी और ठीक इसलिए नहीं होती थी क्योंकि उसकी बीमारी शरीर की कम और दिमाग की ज़्यादा थी। अस्पताल में लड़की के कमरे में एक खिड़की रहती थी और खिड़की के बाहर एक पेड़ रहता था। वो हमेशा उस पेड़ की गिरती हुई पत्तियाँ गिनती रहती और कहती कि जैसे ही इस पेड़ की आखिरी पत्ती गिरेगी, मैं ये दुनिया छोड़ दूँगी। भयानक सर्दी की रातों में उस पेड़ पर गिन कर बस छः-सात पत्तियाँ बची थीं।

दिमाग कमाल की चीज़ होती है। अगर आँखें 'अ' से अनार देखती हों और दिमाग कहे कि ये 'अ' से अनार नहीं बल्कि 'ह' से हरामजादा है तो आँखों को अनार, हरामजादा लगने लगेगा। लड़की के साथ भी वही हो रहा था। जब कभी उसकी आँखें 'ज़' से ज़िंदगी देखती भी थीं तो चालाकी से दिमाग उसे कहता था कि लड़की ये 'म' से मौत है। जिस रात उस पेड़ पर बस एक पत्ती बची तो लड़की ने अपनी तीमारदारों से कह दिया कि आज रात आखिरी पत्ता गिरते ही मैं मर जाऊँगी।

उसी मोहल्ले में रहने वाले एक गुमनाम पेंटर को जब इस बात का पता लगा तो वो फ़ौरन घर वापस गया, अपनी कूँची निकाली और कैनवस पर हरा रंग बिखेर दिया। उसने एक पत्ता पेंट किया और पत्ते को रात ही में पेड़ पर टाँग दिया। लड़की जब सुबह उठी तो आखिरी पत्ता अभी भी शाख से चिपका हुआ था और मालूम हुआ कि उस पत्ते को सारी रात पेंट करने और भयानक बरसात में पेड़ पर टाँगने में, सर्दी से उसी अस्पताल में पेंटर की मौत हो गई। लड़की ने अपनी हिम्मत बटोरते हुए उस दिन खुद से ये वादा किया कि अब वो कभी हिम्मत नहीं हारेगी, कम-से-कम उस पेंटर के मास्टरपीस के लिए ही सही।

कहते हैं कि वो पेंटर मोहल्ले का सबसे गुमनाम और दुत्कारा हुआ इंसान था। पिछले कई सालों से उसने कुछ भी पेंट नहीं किया था। उसने अपनी आखिरी पेंटिंग को नाम दिया- 'लास्ट लीफ़'।

केशव धीरे-धीरे गुड्डू को लास्ट लीफ़ मानने लगा था। उसकी वजह कुछ भी हो सकती है। गुड्डू उसकी ज़िंदगी में डोर-बेल बजाकर पिज्ज़ा लेकर दाखिल हुआ था। अगर उस दिन गुड्डू वक्रत पर दाखिल न हुआ होता तो शायद केशव टोपाज़ के ब्लेड से अपनी नस को काटकर उसका फव्वारा बना चुका होता। उसने केशव को सुसाइड करने से बचाया था।

केशव सुसाइड क्यों कर रहा था?

क्योंकि केशव के लिए सुसाइड भगवान को ये बताने का एक तरीका था कि इससे पहले कि तुम मुझे फ़ायर करो, मैं खुद तुम्हारी चाकरी क्विट कर सकता हूँ।

## 7.

आज फिर दारू की महफ़िल सजी थी। गुड्डू अब दारू पीने के सारे नियम और क़ायदे-क़ानून सीख चुका था। बहुत से लोग हार्वर्ड या एम.आई.टी. जाकर ग्रेजुएट होते हैं और तमाम सारे लोग

बस दो पेग लगाकर दारू की टेबल पर। आज केशव और गुड्डू के ग्रेजुएट होने की बारी थी। दोनों ज़रूरी साजो-सामान के साथ तैयार थे। केशव कहता था कि दारू पीने से थॉट-प्रोसेस मज़बूत होता है और वो सारी बातें अचानक ही चुटकी बजाकर 'यूरेका-यूरेका' की तरह समझ आ जाती हैं जो बरसों से नहीं सुलझ रही थीं। पुराना प्यार हो, यारी दोस्ती की उलझन हो या खुद से नाराज़गी। दारू की बोतल नॉर्थ-साऊथ कम्पस की तरह भटके मुसाफ़ि़रों को झट से रास्ता सुझा देती है। इसलिए वो दोनों आज फिर कम्पस लेकर बैठे थे।

“यार तुम इतने दिन से यहाँ पर हो। साला हम तुमसे कभी पूछे ही नहीं कि यहाँ आने से पहले तुम जब गाँव में थे तो क्या करते थे? यहाँ कैसे आना हुआ? वग़ैरह-वग़ैरह...”- केशव ने पूछा।

“पेट के लिए केशव, पेट के लिए। पढ़ाई किए थे, बारहवीं तक। फिर बी.ए. में दाखिला लिए। लेकिन लगा नहीं कि उससे कुछ काम बन पाएगा तो इंग्लिस स्पीकिंग कोर्स कर लिया”- गुड्डू ने दार्शनिक के अंदाज़ में काँच के गिलास में झाँकते हुए जवाब दिया।

“ओह्ह! तभी आप अंग्रेज़ी इतनी मासाअल्लाह बोलते हैं!”

“कोशिश किए थे। फिर विशिष्ट बी.टी.सी. करके टीचर बनने के लिए फार्म भरा लेकिन उसमें वो लोग दो लाख रुपये माँग रहे थे।”

“दो लाख? ज़्यादा चढ़ गई है क्या?”

“नहीं वो लोग दारू कहाँ पिए थे और वैसे भी सत्तर-अस्सी हज़ार तो सिर्फ चपरासी बनने का लग जाता है।”

“चपरासी ही बनना है तो अस्सी हज़ार काहे लिए देना।”

“चपरासी नहीं। सरकारी चपरासी!”- गुड्डू ने ‘सरकारी’ पर जोर देते हुए कहा।

“अरे सरकारी चपरासी खुद सरकार थोड़े होता है।”

“ऐसे ही होता है।”

“काहे?”

“बस होता है।”

केशव ने मान लिया। अक्सर गुड्डू से वजह पूछना बेकार होता था। वो बस कह देता था। आकाशवाणी की तरह। केशव सुन लेता था। धरती वालों की तरह। केशव शायद इसलिए भी सुन लेता था क्योंकि उसे गुड्डू की बे-सिर-पैर की बातें सुनना अच्छा लगता था। कहता था कि दुनिया भर का कचरा सुन-सुन कर उसके कानों में जितना खूँट जम चुका था, गुड्डू की बातें उस पर मुलायम-मुलायम रुई वाले इयरबड की तरह गुदगुदी करती थीं।

“वैसे केशव, तुम क्या करते हो?”- गुड्डू ने उसके कान में गुदगुदी करते हुए कहा।

“लिखते हैं”- केशव ने गुदगुदी से मचकते हुए कहा।

“हाँ! वो तो ठीक है, लेकिन करते क्या हो?”

“अबे लिखते हैं बे!”

“लिख-लिख के इतना अच्छा घर बना लिए?”

“हाँ!”

“गाँव में गोधन को जानते हो?”

“नहीं...क्यों?”

“गाँव में पेड़ के नीचे बैठ कर दिन भर चिट्ठी लिखता रहता है। दिन भर का दस-ग्यारह रुपया बना पता है”- गुड्डू ने मासूमियत से कहा और वो अगला पेग बनाने लगा।

“अबे गोबर गणेश! हम रायटर हैं रायटर। पूरे भारत के सबसे ज़्यादा बिकने वाले रायटर। केशव ठाकुर! हर एक दिन हमारी हज़ारों-हज़ार किताबें बिकती हैं। छह-सात फ़िल्में भी लिख चुके हैं...बस हमारा नाम नहीं आता उसमें...लो...हमारा भी पेग बनाओ...”

“नाम क्यों नहीं आता तुम्हारा?”

“बंबई में इसे घोस्ट-रायटिंग कहते हैं। मतलब लिखते आप हैं और नाम किसी और का आता है।”

“क्यूँ?”

केशव ने लगभग तिलमिलाते हुए उसे समझाने की कोशिश की लेकिन फिर समझाते-समझाते बीच में ही रुक गया, “नाम इसलिए नहीं आता है क्योंकि....अरे छोड़ो यार...हम भी किसे समझा रहे हैं...तुम यार बस दारू पियो। अब बंबई आ गए हो तो थोड़ा ढंग और सहर सीखो, कल ही तुम्हारा फेसबुक एकाउंट बनाते हैं।”

“वो क्या होता है?”

“अबे यार! तुम वाकई में एकदम बोदा इंसान हो। जिंदा कैसे रहते हो बे? न ढंग न तरीका। तुम यार बस दारू पियो।”

“अच्छा ये बताओ केशव, तुम बंबई कैसे आए?”

“उड़ के। हनुमान जी की तरह। लंका का रस्ता भटक गए थे तो इधर आ गए।”

“मजाक अच्छा कर लेते हो तुम। हा हा...उड़ के...हाहा...हनुमान जी की तरह...हाहा...”

“तुम दिमाग से एकदम पैदल हो क्या? किसी भी बात पर दाँत फाड़ कर हँसने लगते हो।”

“उड़ के...हाहा...उड़ के...हाहा...हनुमान जी की तरह...हाहा...” गुड्डू अभी तक केशव के जोक से जोक की तरह चिपट कर हँस रहा था। वो ऐसे हँसता था जैसे कि बस टोंटी खुल गई हो और अब जो कुछ अंदर ज़ब्त था, बाहर आ जाएगा।



“सिगरेट पियोगे?”- केशव को लगा कि बात बदल देनी चाहिए नहीं तो गुड्डू यूँ ही दिल्लगी करता रहेगा और हँस-हँस कर पगलाता रहेगा। उसने गोल्ड फ़्लेक के डब्बे से एक छोटी गोल्ड निकाल कर गुड्डू की ओर बढ़ा दी, तो गुड्डू ने लेने से इनकार कर दिया।

“नहीं! हम सिगरेट नहीं पिँएँगे। अगर हमारी अम्मा को पता चलेगा तो बुरा लगेगा उनको। तुम्हारे कहने पर हम दारू तो पी लिए लेकिन सिगरेट को हाथ भी नहीं लगाएँगे। हम वादा किए थे अपनी अम्मा से कि बंबई जाकर ये सब हरकतें नहीं करेंगे।”

“कैसे पता चलेगा तुम्हारी अम्मा को कि तुमने दारू पी है?”

“भगवान सब देखता है।”

“बेटा तुमको चढ़ गई है।”

“नहीं।”

“हम कह रहे हैं कि तुमको चढ़ गई है।”

“हम जब छोटे थे तो मास्टर साहब ने एक बात कही थी जो हमको आज तक याद है।”

“क्या बात कही थी?”

“हम जो भी करते हैं भगवान उसका बराबर हिसाब-किताब रखता है। हमारे दाहिने हाथ में एक देवदूत रहता है जो हमारे सारे अच्छे कर्मों का लेखा-जोखा रखता है। सब नोट करता रहता है। और हमारे बाएँ हाथ में दूसरा देवदूत रहता है जो हमारे बुरे कर्मों का लेखा-जोखा रखता है। भले ही हम चोरी-छिपे भी कोई बुरा काम कर लें, वो फट से उसे नोट कर लेता है। फिर बाद में जब हम ऊपर जाते हैं तो सब चीज़ का हिसाब-किताब होता है। बराबर हिसाब-किताब..और हमारे सारे बुरे कर्मों की हमको सज़ा दी जाती है”- गुड्डू बोलते-बोलते लगभग खड़ा हो गया था।

दारू पीते हुए एक वक़्त हमेशा ऐसा आता है जब बातचीत का मुद्दा अचानक से बदल जाता है। एजेंडा एक ट्रैक से उछलकर अचानक से दूसरे ट्रैक पर दौड़ने लगता है। जैसे कोई अचानक से यारी-दोस्ती-बकचोदी के बीच में अचानक से एक्स गर्लफ्रेंड की बात छेड़ दे तो बातचीत का सिलसिला कुछ और ही शक्ल ले लेता है। गुड्डू ने भगवान की बात छेड़कर वही किया था। अभी तक ‘इस देस’ की बातें हो रही थीं, तो अब परदेस की बारी थी। भगवान की बात होने पर पहले तो केशव जी भर के हँसा, फिर उसने साँस फूलने से अपने आप को बचाते हुए कहा-

“अबे चूतिये! तुमने इसी चक्कर में अपनी सारी ज़िंदगी चौपट कर ली? न दारू पी, न सिगरेट और हमें यकीन है कि अभी तक नाड़ा खोलकर पैजामा भी नहीं सरकाया होगा तुमने, कि कहीं भगवान आकर तुम्हें नंगा न देख ले। तुमसे तो हम ही भले हैं। हमको भगवान का कोई डर नहीं रहा। लौंडियाबजी भी किए और दारू सिगरेट भी। गोबर गणेश! दुनिया में भगवान नाम की कोई चीज़ एग्जिस्ट नहीं करती।”

“अच्छा....भगवान नहीं होता तो हमको-तुमको बनाया किसने?”- गुड्डू ने ये सवाल ऐसे

पूछा जैसे केशव के पास इसका कोई जवाब नहीं होगा और अभी भगवान रेफ़री की तरह आकर, गुड्डू का हाथ उठाकर उसे विजयी घोषित कर देगा।

“डार्विन का नाम सुने हैं आप?” - केशव ने पूछा।

“नहीं! क्यों? उसने बनाया था?”

बहस अब गरमा चुकी थी। भगवान अब खुद चुपचाप रेफ़रीगिरी छोड़कर कोने में बैठकर उनकी बहस सुन रहा था। भगवान दोनों के प्वाइंट्स नोट कर रहा था। केशव एक, गुड्डू ज़ीरो। केशव एक, गुड्डू एक। गुड्डू दो, केशव एक ...। बोरियत से बचने के लिए भगवान ने अपने हिस्से का पेग बना लिया। उसे मज़ा आने लगा। मैच का आगे का आँखों देखा कुछ हाल इस प्रकार है-

केशव- “नहीं गधे, डार्विन ने नहीं बनाया था और तुम्हारी तरह पहले वो भी यही सोचता था कि ये दुनिया किसी परम-पिता-परमात्मा क्रिस्म के इंसान ने बनाई है, लेकिन जब उसे सच्चाई का पता चला तो रात-रात रोता था वो। उसकी डायरी पढ़ना कभी। दुखी होकर बच्चों की तरह कुलबुलाता था।”

गुड्डू- “रोता क्यों था वो?”

केशव- “रोता इसलिए था क्योंकि उसे बोध हो गया था, ज्ञान हो गया था।”

गुड्डू- “ज्ञान होने पर, बोध होने पर कोई रोता थोड़े ही है।”

केशव- “रोता है। गौतम बुद्ध भी बच्चों की तरह रोए थे। कुलबुलाए थे।”

गुड्डू- “हम इन सब लोगों को नहीं जानते। हमको बस इतना पता है कि ज्ञान का मतलब आनंद होता है। तुम भगवान को इसलिए नहीं मानते क्योंकि तुमको घमंड है।”

(भगवान ने हिसाब लगाकर स्कोरबोर्ड अपडेट किया। केशव दो-गुड्डू चार)

केशव- “मैं घमंडी नहीं हूँ और मैं तुम्हारे भगवान को इसलिए नहीं मानता क्योंकि घिन आती है मुझे उसके नाम से। वो अपने आप को सर्वज्ञानी और सर्वव्यापी कहता है तो मुझे जरा ये बताओगे कि जब उसकी मज़ी के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता तो तब कहाँ होता है तुम्हारा भगवान जब रोज़ हर सेकेंड हज़ारों लोगों को लूटा जा रहा होता है, मारा जा रहा होता है, छह-छह साल की बच्चियों तक का बलात्कार हो जाता है। बोलो? जब एक पत्ता भी उसकी मज़ी से ही हिलता है तो वो ये सब होने की इज़ाज़त देता ही क्यों है? दिल नहीं पसीजता उसका ये सब होता देखकर?”

(केशव तीन-गुड्डू चार)

गुड्डू- “इंसान अपने कर्मों की सज़ा पाता है।”

केशव- “अच्छा! इंसान अपने कर्मों की सज़ा पाता है तो भगवान अपने कर्मों की सज़ा क्यों नहीं पाता?”

गुड्डू- "मतलब?"

केशव- "गेंझिस खान का नाम सुने हो?"

गुड्डू- "नहीं।"

केशव- "नीरो का नाम सुने हो?"

गुड्डू- "नहीं।"

केशव- "सुनोगे भी कैसे! दोनों ने हज़ारों लोगों की हत्या की थी। आज सारी दुनिया थूकती है उनपर। और आपका ये भगवान हज़ारों नहीं, लाखों नहीं, करोड़ों लोगों की हत्या का ज़िम्मेदार है फिर भी उसकी पूजा की जाती है। क्यों भला?"

गुड्डू- "किसी दूसरे के किए के लिए तुम भगवान को ज़िम्मेदार नहीं बना सकते। इंसान अपने कर्मों की सज़ा पाता है केशव।"

(गुड्डू ने एक ढंग का प्वाइंट रखा। भगवान ने उसके स्कोर में एक नंबर बढ़ा दिया)

केशव- "अच्छा तो अब आप लॉजिक की बात करेंगे! ठीक बात। आपके हिसाब से जो लोग इस जन्म में सताए जा रहे हैं वो वही हैं जिन्होंने पिछले जन्म में खराब काम किए थे...ठीक बात है?... तो इसका अर्थ ये हुआ कि जो पैसे और ताकत वाले लोग उनको सताते हैं वो वही लोग थे जिन्होंने पिछले जन्म में अच्छे काम किए थे ...ठीक बात है?...इस हिसाब से अगले जन्म में आप और आपके जैसे सभी अच्छे-भले लोग दूसरों का खून चूसने के लिए पैदा होंगे? तो अभी ये अच्छाई किस काम की? अगले जन्म खून चूसने की तैयारी के लिए?"

गुड्डू- "केशव! बचपन में हमारे दादा जी एक कहानी सुनाया करते थे। एक बार एक राजा ने अपने प्रजा की पीड़ा से दुखी होकर बहुत दिन तक तपस्या की। भगवान खुश हुए और उससे वरदान माँगने को कहा। राजा ने भगवान से वही बात कही जो तुमने हमसे कही, भगवान की मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता...वगैरह वगैरह...। भगवान ने कहा कि चलो भाई ठीक है... आज से तुम्हारी प्रजा में हर कोई बराबर हो जाएगा, किसी के पास कोई दुख नहीं बचेगा और चारों ओर खुशहाली-ही-खुशहाली..."

"जानते हो उसके बाद क्या हुआ?"

"कोई दूसरे का काम नहीं करना चाहता था। मोची कहता था कि अब उसके पास भी पैसा है तो वो किसी का जूता क्यों सीए? चमड़े से हाथ क्यों गंदा करे? जमादार कहने लगा कि वो किसी और का हगा क्यों उठाए? कुली कहता था कि वो तुम्हारा बोझा क्यों ढोए? पूरे राज में अफरा-तफरी फैल गई। लोग वापस एक-दूसरे को दबाने में जुट गए ताकि दबे-कुचले लोग नीच काम करने को वापस तैयार हो जाएँ। परेशान होकर राजा को वापस तपस्या करके भगवान को बुलाना पड़ा और उसने उनसे बिनती की, कि सब कुछ पहले जैसा कर दो।"

"केशव...इंसान अपने कर्मों के लिए दूसरों को दोषी नहीं ठहरा सकता। हम भले ही ज्यादा पढ़े-लिखे न हों लेकिन कुछ बातें हमें अभी तक याद हैं और हम उन्हें कभी नहीं भूल सकते।"

“ज्ञान का मतलब आनंद है। दुख नहीं।”

(गुड्डू-दस, केशव-छह)

8.

केशव की डायरी में कुछ हिस्से लाल पेन से लिखे हुए हैं। मुझे लगता है कि शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि लाल पेन से स्कूल के टीचर लिखते हैं। लाल पेन से नीले पेन का कुछ भी लिखा हुआ काटा जा सकता है क्योंकि लाल पेन से कही हुई बात वजनदार होती है। या फिर ऐसा सिर्फ इसलिए भी हो सकता है कि उस समय उसके पास नीली स्याही का पेन नहीं रहा होगा। वजह जो भी हो, फ़िलहाल लाल पेन कुछ ऐसा कहता है-

“गुड्डू! अजीब था साला। He was one of the purest souls, I’ve ever met and I don’t think that I would ever meet a soul as pure as his....इस उम्र में छोटे बच्चों की कहानियों की किताबें कौन पढ़ता है? लूडो-साँप-सीढ़ी कौन खेलता है साला। घर में सफ़ाई करने वाले जमादार से भी वो उतने ही प्यार से बात करता था जितना कि हमसे! उसके बिलीफ़ अभी भी वैसे थे जैसे हमारे बचपन में होते थे। मेरे सारे सिनिसिज़म का उसके पास कोई जवाब तो नहीं होता था लेकिन बदले में एक सवाल ज़रूर होता था। एक भोला-सा सवाल।

साला कभी-कभी ऐसी बात कह देता था कि बचपन से आज तक की पढ़ी हुई हज़ार किताबों के ज्ञान पर तरस आने लगता था। ‘ज्ञान से आनंद होना चाहिए...दुख नहीं’ – सच ही तो है। Wisdom should lead to bliss...not to cynicism or a wish to die. And if it does, then it’s just borrowed knowledge. Not wisdom.

पता नहीं, या तो साला गुड्डू ही सही था फिर वो किताबें। लेकिन एक बात तो सच थी, गुड्डू खुश रहता था क्योंकि वो मेहनत करना जानता था। गुड्डू डरपोक नहीं था। गुड्डू हमारे जैसा नहीं था कि ज़रा-सी छींक आ गई तो लगे हाँव-हाँव करने। गुड्डू एक स्टफ़्ड ट्वाय नहीं था, गुड्डू एक टेडी बियर नहीं था।

-केशव ठाकुर। 28th March, 2013

Unintentionally he had taught me a lesson, a lesson that I would never forget – Human ass is surely, God’s craziest masterpiece. I don’t know what God intended while canvassing its curves but, whenever you feel like surrendering, nothing comes to your mind... ask your epic ass for help and offer it. Offer it to people; offer it to your aims, offer it to your goals, offer it to your dreams and even to your idiocies. It is meant to be

offered....One day, your ass starts mattering more than your mind to you and then you would realize that your ass has a great mind in it and your mind always had a great ass in it...Proud to be an Asshole.

Guddu. Bloody Asshole!

- केशव ठाकुर। 30th March, 2013

गुड्डू में शायद ऐसी कोई बात नहीं थी जिसकी वजह से वो आपको खास लग सके और उसकी खास बात थी भी यही कि वो खास नहीं बल्कि एक आम आदमी था। एकदम साधारण आदमी। इतना साधारण इंसान, जिसकी प्रजाति की असेम्बली लाइन भगवान ने लगभग बंद ही कर दी थी। कभी-कभी मेरा मन करता है कि मैं उसे ज़मीन पर गिरा दूँ और चढ़ कर उसकी छाती पर बैठ जाऊँ और फिर पूछूँ उससे के अबे साले! ऐसा क्या है तुझमें जो तुझे परेशान नहीं होने देता। ऐसा कौन-सा सोना-चांदी च्यवनप्राश खाता है कि तेरी फटती नहीं है। साले तू क्या पिछवाड़े में एम-सील लगाकर घूमता है।

जब हम यहाँ आए थे तो हम भी गुड्डू जैसे थे। छाती उमंग से फूली नहीं समाती थी। जैसे कि छाती के गुब्बारे में किसी ने तबियत से फूँक मार के हवा भर दी हो। लेकिन जैसे-जैसे कमाने-खाने के चक्कर में फँसते गए, हर छोटी, बित्ते भर की, कौड़ी भर की चीज़ से हमारी फटनी शुरू हो गई। आश्चर्य होता है हमको कि ये गुड्डू ऐसी कौन-सी प्रजाति का है जो इसकी फटती नहीं है। न पड़ोस के लोगों से, न समाज से और न अपनी खुद की लादी गई उम्मीदों से।

अब तो हमको बस इसी बात का डर है कि वो साला हमको बदल न डाले, सुधार न डाले।

- केशव ठाकुर। 2nd April, 2013"

## 9.

केशव का डर सही निकला। वो बदला तो नहीं लेकिन बदलने की कोशिश ज़रूर करने लगा। बदलने की कोशिश करना बदलने से भी ज़्यादा खतरनाक होता है। पहली बार ऐसा हुआ था जब केशव ने मुझसे साफ़-साफ़ कह दिया कि अब वो मेरे लिए कोई किताब नहीं लिखेगा। मेरे लिए क्या बल्कि किसी के लिए कोई किताब नहीं लिखेगा। उसका नया फ़ितूर था - खुद के लिए लिखना। हुँह... 'खुद के लिए लिखना'। मैंने केशव को समझाया था कि ये फ़ितूर उसे कहीं नहीं ले जाएगा। कम-से-कम वहाँ तक तो बिल्कुल नहीं जहाँ वो जाना चाहता है। खैर, मुझे पता था कि केशव अब मेरे लिए नहीं लिखेगा। केशव मेरे लिए दुबारा लिखने की बात कभी सोचता भी नहीं, अगर गाँव में गुड्डू की ज़मीन बिकने न वाली होती। इस वाक़िये ने केशव को वापस ज़मीन पर लाकर पटक दिया।

थैंक गॉड!

उस दिन मैं और केशव साथ में बैठकर चाय पी रहे थे। आज गुड्डू उस तरह से कमरे में बिलकुल नहीं आया जैसे आया करता था। गुड्डू परेशान था और गुड्डू के परेशान होने का मतलब था कि बहुत कुछ गड़बड़ था। मुझे याद है जब उसे नौकरी से निकाल दिया गया था तब मैं केशव के साथ ही बैठा था। उस दफ़े भी उसने इतने स्वाभाविक अंदाज़ में हँसते हुए कहा था कि नौकरी चली गई तो क्या हुआ, मिल जाएगी... नौकरी ही तो है। तब केशव चिढ़ा भी था क्योंकि उसके हिसाब से गुड्डू इसीलिए फैंटम बन रहा था क्योंकि उसका ठौर-ठिकाना और दाल-रोटी केशव के घर फ़िक्स हो चुका था।

लेकिन आज गुड्डू सच में उलझा हुआ था। केशव के पूछने पर वो बस इतना ही बोला कि हमारे गाँव पर घर की ज़मीन बिकने वाली है और हमें घर जाना होगा। केशव कुछ भी कहता तो गुड्डू का यही जवाब होता- हमें कुछ नहीं पता, बस हमें घर जाना है। केशव ने उसका कॉलर पकड़ कर उसे ऐसे जकड़ लिया था जैसे उसने उसका कॉलर छोड़ दिया तो वो बस अभी घर चला जाएगा और केशव उसे किसी भी हालत में घर वापस नहीं जाने देना चाहता था। उसने चीखते हुए कहा-

“अरे रट ही लगा लिए...गाँव वापस जाना है...गाँव वापस जाना है। जेब में इत्ता बड़ा छेद लेकर गाँव जाकर करिएगा भी क्या। जाना है तो जेब में पैसा लेकर जाइएगा। नहीं तो ज़मीन भी बिक जाएगा और वहाँ लगे हाथ मंडी में आपको भी चढ़वा दिया जाएगा। कहिए अम्मा से कि आप कुछ जुगाड़ कर लेंगे। इत्मीनान रखिए, हम मदद करेंगे आपकी। आपके वहाँ पहुँचने से पहले तसल्ली पहुँच सकती है वहाँ। फ़ोन लगाइए और कहिए कि आप पैसा भेज रहे हैं।”

गुड्डू को पकड़कर, केशव बोलते-बोलते एकदम हॉफ़ रहा था जैसे एक अस्थमा का मरीज़ अपने इन्हेलर को जकड़ कर बैठा हो और कोई उससे उसका इन्हेलर छीने ले जा रहा हो। मुझे कभी समझ नहीं आया कि गुड्डू के लिए केशव के पागलपन की क्या वजह थी। वो ऐसे बर्ताव कर रहा था जैसे उसका आखिरी सिपाही भी ढहने वाला हो।

खैर, गुड्डू रुक गया।

केशव ने चैन की साँस ली। चीज़ें जितनी जल्द सुधरी थीं, उतनी ही जल्दबाज़ी में बिगड़ती दिख रही थीं।

## 10.

मैंने शुरुआत में कहा था कि कहानी खत्म होते-होते आपको ये सारी बातें एक लाइन में खुलती दिखाई देने लगेंगी। उम्मीद करता हूँ कि अब ये सारा रैंडमनेस और केयौस कहानी की शक्ल लेता दिख रहा होगा। अब जैसे हर एक कहानी अपने क्लाइमैक्स पर पहुँचती है, ये कहानी भी अपने क्लाइमैक्स की ओर बढ़ रही है। पहले से बतला देने के लिए माफ़ी चाहूँगा लेकिन अगर उससे मज़ा किरकिरा होने जैसा कुछ न हो तो पहले से हिंट देने में हर्ज़ ही क्या है। अब चूँकि क्लाइमैक्स की बात है तो हीरोइन को भी वापस बुलाना पड़ेगा। जैसमिन और गुड्डू में गाढ़ी दोस्ती हो गई थी और इस दोस्ती की शुरुआत ‘लूडो’ जैसे अजीबो-गरीब खेल से हुई थी। आज

फिर बाज़ी सजी हुई थी।

गुड्डू और जैसमिन संजीदा होकर खेल रहे थे और वहीं पास में केशव अपनी स्टडी टेबल पर बैठा नई किताब लिख रहा था। जैसमिन और गुड्डू अपने में मगन थे और केशव अपने में। केशव उन दोनों की बे-सिर-पैर की बातें सुन कर ये सोच रहा था कि दोनों में से ज़्यादा बेवकूफ़ कौन है (या फिर ये कह लें कि ज़्यादा भोला कौन है, ऐसे किसी को बेवकूफ़ कहना अच्छा भी नहीं लगता और शालीन भी नहीं लगता)।

“सोचने वाली बात ये है कि तुम ये खेल बहुत जल्दी ही सीख भी गई हो और उसमें जबर भी हो गई हो”- गुड्डू ने जैसमिन का हौसला बढ़ाते हुए कहा।

“मैं स्पोर्ट्स में हमेशा से अच्छी रही हूँ”- जैसमिन ने शरमाते हुए कहा।

“सब हुनर की बात है जैसमिन। वैसे जैसमिन! तुम और केशव शादी क्यों नहीं कर लेते?”

केशव ने घूरते हुए कहा- “आप अभी कन्यादान क्यों नहीं कर देते?”

गुड्डू ने कहा- “कन्यादान करने के लिए पैसा कहाँ है हमारे पास?”

“क्यूँ...अम्मा को भेजने के लिए जो पैसा जमा किए हैं, वो हमारी शादी में दे डालिए। आप तो वैसे भी लड़की वालों की तरफ़ से आएँगे, आजकल आप लड़के वाले तो रहे नहीं। लड़की वाले जो हो गए हैं, काफ़ी लूडो-वूडो खेला जा रहा है आजकल”- केशव ने चुटकी लेते हुए कहा।

जैसमिन ने पूछा- “गुड्डू, तुम्हारी मम्मी कैसी हैं?”

“चार..पै..चार...हा हा...लो कट गई गोटी तुम्हारी। खेल से एक मिनट के लिए दिमाग़ हटा नहीं कि बस! देखो हो गई न चूक। तुम केशव के साथ ही खेला करो। मुझसे जीतना तुम्हारे लिए आसान नहीं है।”

“केशव के साथ खेलना में कोई चैलेन्ज़ ही नहीं है। हर बार हार जाता है मुझसे। अभी कल ही तो इतनी बुरी तरह से हारा था।”

“केशव लूडो खेला था!”

“हाँ...केशव आजकल लूडो भी खेलता है और मेरे ज़िद करने पर मेरे साथ ट्वाईलाइट भी देखता है। नई किताब भी लिखी जा रही है। तुम्हारे आने का कुछ-कुछ तो जादू हो रहा है। आई थिंक केशव लव्स यू मोर दैन ही लव्स मी। तुमको पता है केशव आजकल रोज़ शाम तुम्हारे घर लौटने का कितना इंतज़ार करता है!”

“कुछ भी...ऐसे थोड़े ही होता है”- गुड्डू ने शरमाते हुए कहा।

“अरे ऐसे ही है। तुम्हारे आने से केशव बदल गया है। केशव ने बड़े दिनों के बाद मेरे लिए एक रोमैंटिक कविता भी लिखी है। नहीं तो अभी तक वो बस मरने-लुटने-पिटने वाली पेसिमिस्ट बातें ही लिखता था। तुम सुनोगे उसकी कविता?”

जैसमिन बच्चों के से उत्साह से केशव की डायरी उठाने के लिए आगे बढ़ी तो केशव ने उसे

ऐसे घूरा कि वो डरकर वापस बैठ गई। लेकिन फिर भी उसने हिम्मत करते हुए कहा-

“हुह! मुझे तो याद भी है वो कविता...क्या थी वो...म्म...हाँ..”

“...बहुत दिनों के बाद सजनिया, कहा किसी ने कानों में

मिसरी वाली बातें भोली, मानो या न मानो में

बहुत दिनों के बाद हिया में, धड़कन नहीं हरारत है

बंद पड़ गई धड़कन कब की, कुछ तो हुई शरारत है”

गुड्डू ने कहा- “लग रहा है तुम्हारे लिए लिखी है।”

“और नहीं तो क्या तुम्हारे लिए लिखी है, बुद्धू....तुम भी न। पता है केशव तुम्हारे लिए क्या कहता है?”

“क्या कहता है?”

“यही कि तुम पूरे बोदा हो, बोदा।”

केशव ने दोनों की बात से खिसियाते हुए कहा- “यदि आप दोनों की मनोहर कहानियाँ खत्म हो चुकी हों तो हम कुछ लिख लें। नहीं बता दीजिए...आप दोनों की इज़ाज़त भी तो होनी चाहिए न...लिख लें हम?”

गुड्डू और जैसमिन चुप हो गए और चुपचाप लूडो खेलने लगे। केशव वापस से अपनी किताब लिखने लगा। बीच में केशव के फ़ोन पर गुड्डू की माँ का फ़ोन आया और गुड्डू फ़ोन लेकर दूसरे कमरे में चला गया और कॉफ़ी देर तक अपनी माँ से बात करता रहा।

## 11.

अगली सुबह, सुबह हुई। बेहतर होता अगर सुबह, सुबह नहीं होती, क्योंकि सुबह हुई तो गुड्डू घर में नहीं था। और न ही उसका सामान। मतलब ये कि गुड्डू जा चुका था। बहुत खोजने के बाद और दो-चार रोज़ गुज़रने के बाद केशव समझ चुका था कि गुड्डू कम-से-कम मुंबई में तो नहीं है। शुरुआत में तो ये भी नहीं पता था कि गुड्डू को ज़मीन निगल गई या फिर आसमान और पता चलता भी नहीं अगर गुड्डू केशव को फ़ोन नहीं करता।

जब गुड्डू ने केशव को फ़ोन किया तो फ़ोन पर वो वाला गुड्डू था ही नहीं जो यहाँ उसके साथ मुंबई में रहता था। ये कोई और ही गुड्डू था। गुड्डू टूट चुका था क्योंकि न सिर्फ़ उसकी गाँव की ज़मीन और घर बिक चुका था बल्कि जब तक वो गाँव पहुँचा तो उसकी माँ का भी कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिल सका। गाँव वालों ने बताया कि उसे घसीट कर घर से बाहर निकाले जाने के बाद से उसका कुछ पता नहीं चला। एक औरत सब कुछ झेल सकती है लेकिन ज़िल्लत नहीं। ग़लती से, गुड्डू की माँ ने वो भी झेलने की कोशिश की लेकिन ज़िल्लत कभी किसी को कहाँ ही पची है। वो भी नहीं पचा पाई।



कुछ कहानियाँ आखिर में खत्म होते-होते फ़िल्मी हो तो जाती हैं लेकिन फ़िल्मी कहानियाँ सच भी तो हो सकती हैं। ग़लती से गुड्डू की फ़िल्मी कहानी सच भी हो गई और उसका अंत भयानक मेलोड्रामा के साथ ही हुआ। उसकी ज़िंदगी की लास्ट लीफ़ टूटकर गिर चुकी थी और उसके साथ-साथ केशव की ज़िंदगी की भी। पेड़ पर रहने वाली गौरैया भी उड़ कर कहीं और ठिकाना बसाने निकल गई थी। अब हर किसी की ज़िंदगी की लास्ट लीफ़ को वापस से टाँगने कोई पेंटर आए, ऐसा ज़रूरी तो नहीं।

लास्ट लीफ़ के बग़ैर केशव ठाकुर ज़्यादा दिन तक पतझड़ से नहीं लड़ पाया और वो भी मुंबई छोड़ कर चला गया। कुछ लोग कहते हैं कि केशव ठाकुर ने फिर से सुसाइड अटेम्प्ट किया और इस बार उसने झटके से टोपाज़ से अपनी नस काट ही ली लेकिन मुझे नहीं लगता कि ऐसा कुछ हुआ होगा। कहानी बनाने वाले तो बहुत कुछ कहानी बना देते हैं और कहानी का 'दि एंड' जान-बूझ के ऐसा रखते हैं कि लोगों के रोंगटे खड़े हो जाएँ और सुनने वाले कहें कि वल्लाह क्या ख़ूब कहानी कही है! केशव के लापता (या मरना ही कह लीजिए) होने के बाद मेरे घर कुरियर से एक किताब आई। किताब कहो या केशव की डायरी कहो। डायरी के पन्ने पलट-पलट के मैंने आपको अभी तक की ज़्यादातर कहानी सुना भी दी है। डायरी के पहले पन्ने पर लिखा हुआ है-

### **मेरी आखिरी किताब, गुड्डू और जैसमिन के लिए**

केशव की ये किताब (जो कि अगर छापी जा सकी तो) उसकी पिछली सारी किताबों से बहुत अलग होगी। ये किताब, किताब कम, डायरी ज़्यादा है, डायरी कम रैंडमनेस ज़्यादा है और रैंडमनेस कम केयौस ज़्यादा है लेकिन, मैं जितना देख पाता हूँ, ये सारा डिसऑर्डर पता नहीं कैसे ऑर्गेनाइज़ होकर एक पुख्ता शक्ल ले लेता है। लेकिन ये वैसी किताब नहीं हैं, जैसी मैं छापता आया हूँ। ये उसकी पुराने किताबों के जॉनर से कोसों दूर है। वैसे तो उसकी पुरानी सारी किताबें, उसके ही शब्दों में, कुल-मिलाकर, 'दो कौड़ी का साहित्य' थीं लेकिन पब्लिशर और बिज़नेसमैन होने के नाते मैं उसकी बात से इत्तफ़ाक़ नहीं रखता क्योंकि केशव हिन्दुस्तान का सबसे ज़्यादा बिकने वाला लेखक था। ये अलग बात है कि केशव ठाकुर की किताबें सिर्फ़ बस स्टॉप और रेलवे स्टेशन पर ही बिकती थीं, इंटेलेक्चुअल लोगों की ज़मात उसे 'चीप' कहती थी, लेकिन संख्या में उन्हें पसंद करने वाले लोग बहुतेरे थे।

डायरी के आखिरी पन्ने पर लाल रंग के पेन से एक नोट लिखा हुआ है, जिसे तमाम लोग सुसाइड नोट मान लेंगे। नोट के आखिर में केशव ठाकुर का सिग्नेचर है। नोट कुछ ऐसा कहता है-

“नीली छतरी हैं आप, यार सरकार हैं  
हमने सुना है मौला आप भगवान हैं  
बस जी भरोसा उठा, ऐसे भरतार हैं  
आपको दर्द काहे आप हलक़ान हैं।  
पीर भी हमारी अरु चोट भी हमार हैं  
आपने तो कह दिया 'बिधि का बिधान है'  
हँस के तमासा देखें नाहि अधिकार है

काहे रची दुनिया जी मुर्दा-ए-मसान है  
पूरे हैं 'सैडिस्ट' आप रूस के वो 'जार' हैं  
ज़िंदगी दी भाड़े पे, ये मौत भी लगान है  
नीली छतरी हैं आप, यार सरकार हैं  
हमने सुना है मौला आप भगवान हैं..."  
भगवान!

You can't fire me. I quit!!

- केशव ठाकुर

भारत का सबसे ज़्यादा 'बिकने' वाला लेखक।

## साफ़े वाला साफ़ा लाया

### कुत्ता चिंघाड़ता रहा और हाथी भौंकता रहा

“भाइयो! कुत्ता जब भौंकता है तो हाथी क्या करता है?”

“जी...हाथी कुछ नहीं करता भाऊ साहेब। मस्ती में पूँछ हिलाते हुए निकल जाता है।”

“ठीक बात भाइयो! एकदम ठीक बात। लेकिन फ़र्ज़ करो, अगर कि कुत्ता फिर भी नहीं मानता तब हाथी क्या करता है?”

“हाथी तब भी कुछ नहीं करता भाऊ साहेब। हाथी तो हाथी है। उसको कुत्ते से क्या वांदा।”

“हाँ हाँ भाइयो! लेकिन सोचो, सोचो अगर कुत्ता अपनी औक्रात पर आ जाए और हाथी के सामने आकर खड़ा ही हो जाए, अड़ ही जाए; फिर हाथी क्या करेगा?”

“तब...तब तो भाऊ साहेब हाथी कुत्ते की पूँछ पर अपना पैर रख देगा और कुत्ता किकियाते हुए भाग जाएगा। ठीक बात है न भाऊ साहेब?”

“एकदम ठीक बात है, मेरे मस्तमौला हाथियो! एकदम ठीक बात है।”

भाऊ साहेब लकड़ी के विशाल तख़्त पर खड़े होकर ज़ोरदार आवाज़ में भाषण दे रहे थे और सामने हज़ारों लोगों का हुज़ूम जमा हुआ था। भाऊ साहेब के बारे में कहा जाता था कि उनकी शक्ल, अदायगी, सूरत और सीरत हू-ब-हू जंगली बाघ से मिलती-जुलती थी। बोलना शुरू करते थे तो ऐसा लगता था कि कोई जादूगर अपनी सम्मोहन विद्या का प्रदर्शन कर रहा है। बोलते-बोलते हाथ उठा भर दें तो सारा-का-सारा हुज़ूम पैरों के अंगूठों पर ऐसे खड़ा हो जाए जैसे बरसात में चींटे को पंख निकल आए हों। कहते-कहते ठहर जाएँ तो लोग ठहराव को तालियों की गड़गड़ाहट से ऐसे भर दें जैसे बादल की गरज के जवाब में बिजली ने ज़ोरदार कड़कड़ा लगाया हो। जिस तरफ़ घूम जाएँ उस तरफ़ की भीड़ में इतना उत्साह और जज़्बा छिड़क जाए कि उसे अभी रोका न गया तो मैदान का वहीं ‘हीरोशिमा-नागासाकी’ हो जाएगा। दूसरे नज़रिए से देखा जाए तो बोलते वक़्त भाऊ साहेब ऐसे लगते थे जैसे कि मोज़ार्ट अपनी नई सिम्फ़नी का प्रदर्शन कर रहा हो और उसका टूप उसके इशारों पर मंत्रमुग्ध होकर अपना-अपना इंस्ट्रूमेंट बजा रहा हो। और बजाते-बजाते खुद बजने लगा हो। अगर मोज़ार्ट ने उँगलियों का इशारा नहीं बंद किया तो उन्हें रोकने का कोई भी तरीक़ा संभव ही नहीं हो पाएगा।

ऐसे में सुनने वालों की बिल्कुल वही हालत होती थी जैसे कि बाँसुरी वाले और चूहे की कहानी में चूहों की हुई थी। वो कहानी है न, जिसमें एक ऐसा गाँव था जहाँ पर चूहों ने भयानक आतंक मचाया हुआ था। हर जगह, हर कोने और हर सामान में चूहे घुसे मिलते थे। लोगों के

कुर्तों की जेबों में, टोपियों में, तकिये के लिहाफ़ में और गिरेबान में भी चूहे छिपे मिलते थे। कोई भी मंतर, ज़हर या दवा छिड़क लो चूहों पर कुछ असर न होता था। ऐसे में अचानक एक बाँसुरी वाला उस गाँव में आया और उसने बाँसुरी बजाना शुरू किया। सारे-के-सारे चूहे अपने बिलों, कुर्तों की जेबों, टोपियों, लिहाफ़ों और लोगों के गिरेबानों से निकलकर बाँसुरी वाले के पीछे-पीछे उसकी धुन में मगन होकर चल दिए और तब तक चलते रहे जब तक कि वो उसके पीछे पहाड़ी पर न पहुँच गए। उसने तब भी बाँसुरी बजाना बंद नहीं किया और सारे चूहे पहाड़ी से नीचे गिर गए।

भाऊ साहेब सब कुछ थे- जंगली बाघ, मोज़ार्ट, बाँसुरी वाला, 'लिटिल ब्वाय', और न जाने क्या-क्या। लालकुआँ की जनता उन पर जान छिड़कती थी। ये भाऊ साहेब के भाषण देने का पुराना और दिलकश तरीका था। सब लोग इंतज़ार करते थे कि कब भाऊ साहेब वो हाथी और कुत्ते वाला जुमला कहेंगे और कब वो उनके सवालों को ज़ोरदार आवाज़ में जवाब देंगे। लालकुआँ वालों को अब तक सारे जवाब एकदम ठीक-ठीक रट गए थे। वो सब खुद को मस्तमौला हाथी कहते थे। और इस लिहाज़ से पिल्कुआँ टोला के लोग कुत्ते कहे जाते थे।

भाऊ साहेब ने आगे बोलना शुरू किया- "आज हमें 'यंग ब्लड' की ज़रूरत है।"

"यंग ब्लड!"

"क्योंकि अगर इन कुत्तों को सबक सिखाना है तो हमारे यंग ब्लड को आंदोलन में शामिल होना पड़ेगा"। इशारा और मौक़े की नज़ाकत को समझते हुए भीड़ में से एक इंसान ने मैस्कॉट के रूप में एक दस-ग्यारह साल के यंग ब्लड को मंच पर चढ़ा दिया। भाऊ साहेब ने उसे गोदी में उठा लिया और तिलक से उसके माथे का अभिषेक कर दिया। "यंग ब्लड अगर एक बार दहाड़ मार दे तो पूरे पिल्कुआँ के लोगों को बुखार आ जाए। मूत देंगे साले।" भीड़ में आगे बैठे हुए बच्चों में खिलखिलाहट की रेल दौड़ पड़ी, बत्तीसी के एक स्टेशन से शुरू होती थी और अगली ही घड़ी में बग़ल वाले स्टेशन तक फुल-पैसेंजर पहुँच जाती थी। बच्चे कुल मिलाकर तीन बातों पर हँसे- पहला ये कि जिस यंग ब्लड को भाऊ साहेब ने गोद में उठाया हुआ था वो बच्चों की पूरी सेना का सबसे पिढ़ी सिपाही था, दूसरा ये कि पिढ़ी सिपाही को आज खुद बुखार था, तीसरा ये कि भाऊ साहेब ने मंच पर 'मूत देंगे साले' बोला, जो कि बहुत ही हँसी की बात थी। भीड़ में से अचानक से किसी ने आसमान की ओर ज़ोर से नारा उछाला - 'छोटा भाऊ की विजय बोलो' - नारा कुछ दूर ऊपर आसमान की ओर एक ज़िंदा तीर की तरह गया और एक मरे हुए तीर की तरह वापस लौटा। भीड़ में किसी ने मरे हुए तीर को उठाकर वापस जिला दिया - 'छोटा भाऊ की विजय बोलो'। सबने छोटा भाऊ की विजय बोली। विजय हो! विजय हो! विजय हो!

भाऊ साहेब ने छोटा भाऊ को गोद से नीचे उतारा तो सबने उसे ऐसे लपक लिया जैसे मरियम ने जीज़स को लपक लिया था, जैसे देवकी ने कृष्ण को लपका था। अब वो छुट्टन नहीं था। अब वो छोटा भाऊ था।

## मोर पंख उठाकर उड़ा तो उसका पोंद दिखने लगा

इधर बीच बच्चों में बड़ा उत्साह था। लालकुआँ सनातन धर्म विद्यालय में गर्मी की छुट्टियाँ हो चुकी थीं और खेलने के लिए बच्चों के पास नए-नए खेल-खिलौने आ गए थे। अब वो वक़्त नहीं था कि बच्चे चोर-पुलिस खेलें, आइस-पाइस की बाज़ी सजाई जाए या फिर वो गोला बनाकर 'पोसम्पा-भाई-पोसम्पा' कहकर सौ रुपये की घड़ी चुराने वाला खेल खेलते। अब वो भगवा रंग की टीशर्ट और माथे पर लाल रंग का साफ़ा बाँधकर 'मार-कुटौवल' खेलते थे। 'मार-कुटौवल' एक बढ़िया खेल इसलिए था क्योंकि इसके नियम और क़ायदे याद रखना मुश्किल नहीं था। इसमें बस मार कुटाई होती थी। छोटा भाऊ अम्पायर था। वो हाथ से इशारा करके ये बताता था कि फ़लाना खिलाड़ी मारा गया कि नहीं। इशारा होने पर खिलाड़ी को ज़मीन पर चित्त पड़ जाना होता था। धीरे-धीरे ज़मीन पर लार्शें ढेर होने लगती थीं और जिस भी टीम के सारे खिलाड़ी मारे जाते थे उसे हार कुबूल करनी होती थी।

खेल चालू था। एक मरा हुआ पिढ़ी बच्चा अचानक जी उठा क्योंकि उसके दिमाग़ में एक ज़रूरी सवाल कुलबुला रहा था, जिसकी वजह से उससे मरा नहीं जा रहा था। वो लँगड़ाते-लँगड़ाते छोटा भाऊ के पास आया। भाऊ टीले पर बैठा था।

“अरे लँगड़ा क्यों रहे हो लँगड़?”

“क्योंकि मैं लँगड़ा हूँ न छोटा भाऊ।”

“लेकिन तुम लँगड़े कहाँ हो लँगड़?”

“अरे अभी तुमने ही तो कहा न छोटा भाऊ कि मैं लँगड़ हूँ।”

“अरे वो तो मैंने इसलिए कहा कि तुम लँगड़ा रहे थे।”

“हाँ तो, वो मैं इसलिए लँगड़ा रहा हूँ कि तुमने पहले लँगड़ बोल दिया।”

“अबे यार! मैंने लँगड़ इसलिए कहा कि तुम लँगड़ाते-लँगड़ाते इधर टीले तक आए।”

“अच्छा हाँ, याद आया। भाऊ वो मैं लँगड़ा इसलिए रहा हूँ क्योंकि मरने से पहले मोटे ने मेरी टाँग पर गोली मारी थी ना!”

“गोली मारी थी तो तुम ज़िंदा कैसे है?”

“ज़िंदा कैसे हूँ? एँ...नहीं मैं तो मर गया था। अच्छे से मर गया था एँ। ...फिर क्या हुआ? अच्छा हाँ...फिर हुआ ये कि मेरे दिमाग़ में एक सवाल आ गया।”

“कैसा सवाल?”

“मेरे दिमाग़ में सवाल ये आया कि कितने दिन हो गए हम लोग पोसम्पा-भाई-पोसम्पा नहीं खेल रहे। बस मार कुटौवल ही खेलते रहते हैं।”

“पिल्कुआँ वालों को मारोगे कि नहीं मारोगे?”

“हाँ मारूँगा ना भाऊ। बिलकुल मारूँगा, लेकिन क्यों मारने का है भाऊ? वो मेरे दिमाग से उतर गया...वो क्या है न...मगज़ अभी छोटा है। जब ढेर सारी बातें ध्यान रखने कू हो जाती हैं तो कुछ-एक बात सट से फिसलने को हो जाती है। एक बारी बताए थे तुमने कुछ-कुछ कि पिल्कुआँ वालों ने हमारे टोले में मंदिर के पास वाला टट्टीघर तोड़ दिया था।”

“अरे मंदिर के पास वाला टट्टीघर नहीं रे! टट्टीघर के पास वाला मंदिर...मंदिर तोड़ा था पिल्कुआँ वालों ने। लालकुआँ का लाल मंदिर और उसके बाद वहाँ पर कुत्ता काट के डाल दिया था।”

गहमागहमी देखकर जितने भी बच्चे मरे हुए थे, फटाफट ज़िंदा हो उठे। कुछ एक बच्चे सोच रहे थे कि ज़िंदा हुआ जाए या नहीं हुआ जाए? देर-सबेर सभी लड़के टीले के पास इकट्ठे हो चुके थे लेकिन एक लड़का अभी तक मरा पड़ा था। सब उसे देख रहे थे और वो औंधा पड़ा हुआ था। छोटा भाऊ ने जाकर उसके कूल्हों पर पैर की एड़ी से गुदगुदी की तो उसने हँसी रोकने की कोशिश की। लेकिन वो हँसी रोकने की क्या ही कोशिश करता! छोटे बच्चे टट्टी-पेशाब तो रोक सकते हैं लेकिन हँसी रोकना उनके लिए नामुमकिन होता है। जब उनमें धीरे-धीरे हँसी रोकने की क्राबिलियत आ जाए तो समझ लो कि बच्चे बड़े हो गए हैं।

छोटा भाऊ ने कहा कि सभी लोग कान खोल कर समझ लो कि हमें पिल्कुआँ जाकर उनकी मस्जिद तोड़नी है। फिर उसके ऊपर भाऊ साहेब अपन लोग का मंदिर बनाएँगे। हम लोग यंग ब्लड हैं। पत्थर मार के जल्दी से मस्जिद तोड़ देंगे। पत्थर से नहीं टूटेगा तो पूरा गुम्मा मार के फोड़ देंगे। गुम्मा से नहीं फूटेगा तो गुलेल में सुतली बम फँसा-फँसा के फेंक-फेंक मारेंगे। सब बच्चे जवाब में ज़ोर से चिल्लाए- ‘मंदिर वहीं बनाएँगे...मंदिर वहीं बनाएँगे।’

बच्चे हड़शा-हड़शा करके अपना काल्पनिक मंदिर बनाने में मगन थे तभी अचानक एक मोर उड़ते-उड़ते मैदान की तरफ़ आया। एक लड़का चिल्लाया- “अबे देख मोर! मोर उड़ा।” सभी बच्चे मोर के पीछे-पीछे भागे। छोटा भाऊ भी भागा। छोटा भाऊ ‘छुट्टन’ बनकर भागा। सबने दूर तक जाकर मोर का पीछा किया और मोर हाँफते-हाँफते आगे भागा। मोर को लगा कि वो ऐसे तो बच्चों से तेज़ नहीं दौड़ पाएगा तो फिर वो पंख उठाकर भागा। उड़ा-दौड़ा। दौड़ा-उड़ा।

“अबे देख मोर नंगा...नंगा हो के भागा है। मोर का पोंद दिख रहा है।”

“हा हा हा।” सब हँसे।

सबने तब तक मोर का पोंद देखा जब तक कि वो उड़ते-उड़ते आँख से ओझल न हो गया। लेकिन मोर तो मोर था, उससे ज़्यादा ऊँचा क्या ही उड़ पाता। इसलिए उसकी पोंद लड़कों से छिप न पाई। लड़के इतना बेधड़क हँस रहे थे कि उनसे और आगे दौड़ा नहीं जा रहा था। थोड़ी देर में सब ज़मीन पर लोटे पड़े थे और रह-रह कर उनके मुँह से बस कुछ छोटे-छोटे शब्द बुदबुदाकर फूटते थे -‘पोंद’...हाहा...‘नंगा मोर’...हाहा...‘पोंदा’...‘हाहा’...‘पोंद पोंद पोंदा’....

“ये मोर भी साला पिल्कुआँ का मुसलमान होगा।” एक ने कहा।

“क्यों?” किसी ने कहा।

“वो हमको देखकर भगा न...इसलिए”। एक ने कहा।

“हा हा हा...” सबने कहा।

## माए-नि-माए मैं इक शिकरा यार बनाया

छुट्टन माँ के बगल में लेटा हुआ था। ऊपर खुला आकाश था। नीचे आकाश नहीं था। नीचे ज़मीन थी, ऊपर ज़मीन नहीं थी। छुट्टन ये सोचकर औंधे मुँह पलट कर लेट जाता था कि पलटी लेने से अब आकाश नीचे हो जाएगा और धरती ऊपर। लेकिन फिर भी दोनों अपनी जगह ज्यों-के-त्यों तैनात थे। वो बहुत देर से ये गुत्थी सुलझाने की कोशिश में उलट-पलट रहा था। माँ ने उसे हैरान देखकर कहा- “सीधे लेटो।”

उसने कुछ भी नहीं कहा। वो कुछ कहने लगता तो अभी तक आकाश जितना नीचे की ओर खिसका था वो सब बेकार हो जाता और पूरी मेहनत पर पोछा मर जाता। वो धूनी रमाए हुए साधुओं की तरह अपने ही ‘ट्रांस’ में मगन था।

“ए छुट्टन, तुमको क्या हो गया है आजकल? और जी तुम आजकल रोज भाऊ साहब की रैली में काहे भाग जाते हो? तुमको कितनी बार बोले हैं कि तुम इन सब लोग से दूर रहो।”

“और माँ! हम भी तुमको कितनी बार बोले हैं कि अब हम छुट्टन नहीं हैं। हम छोटा भाऊ हैं...छोटा भाऊ।”

माँ की हँसी छूट गई। हँसी ऐसे छूटी जैसे कपड़े के ढेर के नीचे से चूहा छूटा हो। माँ ने हँसी के चूहे को गुस्से के ढेर के बीच में झूठ-मूठ दबाया हुआ था। माँ ने छुट्टन को अपनी और घसीटा और छुट्टन को टाँगों में दबाकर उसे गुदगुदी करने लगी। छुट्टन छूटते-छूटते छूट नहीं पा रहा था। अगर कुछ छूट रहा था तो बस उसकी हँसी छूट रही थी।

“अब बताओ, कौन हो तुम?”

जवाब में बस छुट्टन की हँसी निकली जिसका मतलब था छोटा भाऊ।

माँ ने दुबारा गुदगुदी की और फिर से पूछा कि बताओ कौन हो तुम?

जवाब में फिर से छुट्टन की हँसी निकली। पिछली बार की हँसी से ज़ोर की हँसी। इस बार जिसका मतलब था ‘छुट्टन’, ‘माँ! छुट्टन’, ‘तुम्हारा छुट्टन’।

“बबुआ, तुम चुपचाप घरे पे रहा करो। ये सब रैली-वैली में मत जाया करो। किसी दिन दब-दुबा जाओगे भीड़ में तो किशमिश की तरह फूट कर पिचक जाओगे। जूस निकल जाएगा तुम्हारा पिचक से।”

“माँ! लेकिन हमें मंदिर बनाना है न?”

“कौन-सा मंदिर जी?”

“वही टट्टी घर के पास वाला मंदिर जो पिल्कुआँ वालों ने तोड़ दिया था और वहाँ काट के कुत्ता डाल दिया था।”

“वहाँ कोई मंदिर नहीं था रे! कोई टट्टीघर के पास में मंदिर काहे बनाएगा! तुम एकदम बौड़म हो क्या जी? तुम लोग क्या गप्प हॉकते घूमते रहते हो दिन भर? कोई किसी का मंदिर नहीं तोड़ा था। कहीं कोई मंदिर नहीं था।”

माँ बोलते-बोलते अचानक गुस्सा हो गई। गुस्सा डर में तब्दील हुआ और डर एक जोड़ी आँसुओं में तब्दील होकर गालों से टुलक कर छुट्टन के माथे पर गिर गया। छुट्टन आँखें बंद करके लेटा हुआ था- “माँ! पानी होने लगा क्या? नीचे चल के लिटा दो, नींद आ रही है।”

## आदमी जल गया था, लाश नहीं जल पाई थी

बच्चे छुट्टन को बुलाने आए थे। छुट्टन बड़ी मुश्किल से आसमान को नीचे और धरती को ऊपर करके सोया था। रात में उसकी नींद खराब करने को शायद दो-एक बूँद बारिश भी हुई थी। वो धनुष की तरह सोया हुआ था और प्रत्यंचा की तरह उसने चादर को खींचा हुआ था, प्रत्यंचा का एक सिरा पैरों के पंजों के बीच फँसा हुआ था और दूसरा हथेली की मुट्ठी में बिंध गया था। बच्चे एक-एक करके छुट्टन को उठाने की कोशिश कर रहे थे लेकिन छुट्टन तख्त से हिल नहीं रहा था। छुट्टन को अगर धनुष माना जाए तो उसे उठाने की कोशिशों का सीन कुछ ऐसा दिखता था जैसे कि बच्चे सीता स्वयंवर में आए ‘देस-बिदेस’ के राजाओं की तरह आते और ‘छुट्टन-धनुष’ हिलाने की नाकाम कोशिश करके लौट जाते। उनकी तमाम कोशिशों के बावजूद छुट्टन टस-से-मस न होता था।

“अरे! इसको जल्दी से उठाओ नहीं तो चौराहे पर जले मानुस को कोई उठा ले जाएगा और हम लोग उसको देख नहीं पाएँगे।”

“उठ ही नहीं रहा है साला, इतना उठाया तो।”

“मर गया क्या?”

“मर कहे गया होगा बे, कुछ भी बकर-बूँ चोदे रहो...बस, उठाओ न उसको, नेतागिरी बराबर करो कोने में खड़े होकर।”

पराक्रमी राजाओं की किचकिच के बीच लँगड़ भगवान राम की तरह आया और उसने छुट्टन को पाव भर के धनुष की तरह तख्त से उठा दिया। राजा लोग हैरान रह गए। विजयी लँगड़ का मुँह भगवान राम की तरह चमक रहा था और छुट्टन का मुँह परशुराम की तरह गुस्से से फनफना रहा था। नींद तोड़े जाने के गुस्से में छुट्टन बिना सवाल-जवाब किए लँगड़ को थूरने के लिए आगे बढ़ा लेकिन परशुराम के गुस्से के आगे श्रीराम-छाप-विनम्रता से सर झुकाने के बजाय लँगड़ बाहर की तरफ सरपट दौड़ पड़ा। बाक़ी बच्चे भी लँगड़ और छुट्टन के पीछे-पीछे हो लिए। पूरी-की-पूरी बारात गली से मोहल्ले और मोहल्ले से गलियाँ पार कर साँय से निकल चली। छुट्टन ‘तू रुक साले’ चीखते हुए भाग रहा था और लँगड़ ‘अबे मैं क्या करूँ, उन लोग



तुझे उठाने के लिए बोले थे' चीखते हुए भाग रहा था।

बारात भागते-भागते शिवाजी चौक वाले चौराहे पर पहुँच गई। चौक के बीचों-बीच घोड़े पर सवार वीर शिवाजी की विशालकाय मूर्ति लगी हुई थी। मूर्ति के हाथों में तलवार थी। तलवार भोथरी लग रही थी। या तो तलवार पर जंग लगा हुआ था या फिर कत्थई रंग का पेंट। घोड़ा आवेश में अपनी पिछली दो टाँगों पर खड़ा था। लाश को उसकी अगली टाँगों के ठीक नीचे सरका दिया गया था, ऐसा लगता था जैसे जला हुआ आदमी घोड़े की टापों के नीचे आने से दब कर मर गया हो और घोड़े ने चौंककर अपनी टाँगें उठा ली हों। घोड़े को देखकर लगता था कि वो कह रहा है कि आदमी जलने से मरा है, दबने से नहीं। वो आदमी, आदमी कम और पुराने पेड़ की टूटी शाख ज़्यादा लग रहा था। चौक पर कोई खास भीड़ नहीं थी क्योंकि ये इस तरह का पहला वाक़या नहीं था। जो भी रही-सही भीड़ वहाँ पर बची थी वो इस जिज्ञासा में जुटी थी कि मरने वाला लालकुआँ का था कि पिल्कुआँ का। अगर लाश जली हुई न होती तो उसका पैजामा उतार कर इस बात का पता लगाया जा सकता था कि वो दोनों में से कौन टोले का आदमी था।

“अबे! देख कौन टोले का आदमी है?” भीड़ में से किसी ने कहा।

“मुझे क्या पता कौन टोले का होगा। वो तो जल गया है पूरा। कुछ पता ही नहीं चल रहा है कि कौन रहा होगा।”

“अरे! उसका पैजामा उतार कर देख ना...चूतिये!”

“अरे पैजामा भी तो जल गया है। पैजामा होता तो उतार कर देख लेता।”

“अबे जब पैजामा जल गया है तो देख कर बता ना!”

“यार तू ग़ज़ब आदमी है। जब पैजामा ही नहीं है तो उतारूँ क्या घंटा?”

“तू रहने दे मेरे बाप। जब पैजामा नहीं है तो सीधे-सीधे देख कर बताया जा सकता है। तू हट पीछे ज़रा मुझे आगे आने दे। इन सालों को तो मैं जली आँख से देख कर शिनाख़्त कर सकता हूँ। जली लाश क्या चीज़ है....हाँ...पिल्कुआँ का ही है....साफ़-साफ़।”

“बड़े आए, बड़का तीरंदाज हो ना तुम। कुछ भी तो नज़र नहीं आ रहा है। एक-एक अंग जल कर कोयला हुआ पड़ा है और तुम उड़ती चिड़िया को देखकर बता दिए कि मर्द है कि जनाना। लफ़्फ़ाजी करते हो। हाँ! हम इतना ज़रूर मानते हैं कि वीर शिवाजी के घोड़े के नीचे कोई इसको डाल गया है तो ये पिल्कुआँ का ही आदमी होगा।”

छुट्टन और बाक़ी के बच्चे दूर खड़े थे। उनके लिए कुछ-एक बातें बड़ी हैरानी पैदा करने वाली थीं। पहली ये कि पैजामा उतार कर ये कैसे पता किया जाता है कि आदमी कौन से टोले का है। दूसरी ये कि आदमी घोड़े के नीचे आने से मरा होगा या फिर जलकर मरा होगा। तीसरी ये कि, तब जब कि आदमी मर जाता है तो उसका क्या होता है। और चौथी ये कि जो आदमी जलकर मरता है, उसे दोबारा चिता में जलाया जाता है या नहीं। उनमें से किसी के पास इन बातों के ठीक-ठीक जवाब नहीं थे। बस कुछ अटकलें थीं और कुछ क़यास थे। छुट्टन हैरान भी था और डरा-सहमा भी। कभी-कभी हैरानी डर से बड़ी होकर कौतूहल बन जाती थी और कभी-

कभी डर हैरानी से बड़ा होकर सिहरन बन जाता था। सिहरन पैर के अँगूठे से उठती थी तो झट से छाती तक दौड़ कर वापस अँगूठे को आ जाती थी जैसे कि सिहरन जल्दी से छाती तक जाकर कुछ छूकर आने का खेल खेल रही हो। इसी बीच भाऊ साहेब की जीप चौक की ओर आई। जीप को रथ की तरह सजाया गया था। रथ पर एक बैनर लगा हुआ था जो साफ़ शब्दों में कहता था- 'मंदिर यहीं बनाएँगे'। रथ गोल घेरा बनाता हुआ चौक के चक्कर काट रहा था। रथ पर भाऊ साहेब नहीं बैठे थे लेकिन उनकी आवाज़ ज़रूर बैठी थी। आवाज़ रथ में बैठी थी या रथ पर लगे लाउडस्पीकर में, ये तो नहीं पता लेकिन भाऊ साहेब की आवाज़ रथ को हाँकते-हाँकते ही चली आ रही थी।

“मेरे भाइयो, अपनी-अपनी तलवारें निकालने का वक़्त आ गया है। न सिर्फ़ तलवारें निकालने का बल्कि उन पर धार चढ़ाने का भी वक़्त आ चला है। दिल्ली में कुर्सी पर बैठे नपुंसकों को दिखा देने का वक़्त आ गया है कि ये देश गाँधी का नहीं है बल्कि ये देश वीर शिवाजी का देश है। ये देश हरे और सफ़ेद रंग का देश नहीं है, बल्कि ये देश भगवा रंग का देश है। तैयार रहो...मंदिर यहीं बनाएँगे।”

भीड़ जो अभी तक दिशाहीन होकर इधर-उधर आ-जा रही थी, अचानक सतर्क हो चुकी थी। भाऊ साहेब की आवाज़ दूर-दूर तक जाकर सबकी उँगली पकड़ कर उनको चौक तक ले आ रही थी। भीड़ अपने स्वभाव के विपरीत डिसिप्लिन में आती हुई दिखाई दे रही थी। छुट्टन और उसके दोस्तों को समझ नहीं आ रहा था कि उन्हें क्या करना है, इसलिए वो हडबड़ी में भीड़ के लोगों की नकल करने की कोशिश कर रहे थे। सिर्फ़ छुट्टन ही नहीं, बल्कि भीड़ का हर एक इंसान छुट्टन जितना ही क्लू-लेस नज़र आ रहा था। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि आखिर नकल करनी किसकी है? ख़ैर, उनकी इस समस्या का भी समाधान जल्दी ही हुआ। जीप से निकल कर कुछ नौजवान सबके माथे पर भगवा रंग का साफ़ा बाँध रहे थे। भगवा साफ़ा, बँधते ही, आदमी को भीड़ के बाक़ी लोगों से अलग बना देता था और बाक़ी लोगों को समझ आ जाता था कि आखिर अब किसकी नकल करनी है। आदमी, आदमी कम और रंग ज़्यादा हो गया था और रंग, रंग कम और ढंग ज़्यादा।

साफ़ा बाँटने वाले आदमी ने लाश को कसकर लात मारी तो उसका एक हिस्सा 'फूटकर' आदमी के बजाय चूरन हो गया। जैसे कि वो कभी आदमी था ही नहीं। चूरन ही था। और किसी ने चूरन-पानी का लौंदा बनाकर उसे आदमी का आकार दे दिया हो। देखते-ही-देखते सबने लाश को लातों से मारना शुरू कर दिया। आदमी को चूरन बनाने के लिए होड़ मच गई। पहले किसी ने इस तरह से आदमी को चूरन होते नहीं देखा होगा, इसलिए उन्हें ये खेल मज़ेदार लग रहा था। साफ़े वाला आदमी छुट्टन की ओर बढ़ा। उसे साफ़ा देने के लिए। पीछे से भाऊ साहेब की आवाज़ आई-

“भाइयो! जब धर्म पर आँच आती है तो हथियार उठाना ही पड़ता है। खुद तुम्हारे भगवान ने कहा है कि धर्म की लड़ाई में जीते और जिए तो धरती तुम्हारे नाम और मारे गए तो आसमान तुम्हारे नाम। और जो लड़ा ही नहीं उसका नाम नामर्द।”

साफ़े वाला आदमी छुट्टन की ओर एक क़दम बढ़ता था तो छुट्टन दो क़दम पीछे चला

जाता था। लेकिन छुट्टन के दो छोटे क़दम मिलकर भी उसके एक बड़े क़दम से छोटे पड़ जाते थे। भाऊ साहेब की आवाज़ आगे बोली-

“जो नहीं लड़ा उसका नाम- नपुंसक...”

साफ़े वाले ने छुट्टन की ओर साफ़ा बढ़ाया। छुट्टन ने अपना हाथ पैट के पीछे वाली जेब में छुपा लिया। लेकिन साफ़े वाले को पता था कि छुट्टन का हाथ कहाँ है।

“जो नहीं लड़ा उसका नाम- कायर...” भाऊ साहेब ने कहा।

“छोटा भाऊ! ये लीजिए साफ़ा पहनिए।” साफ़े वाले ने कहा।

“यंग ब्लड...हमें यंग ब्लड की ज़रूरत है।” भाऊ साहेब ने कहा।

“ऐ...नहीं चाहिए...नहीं चाहिए...” छुट्टन ने कहा। लेकिन तब तक उसे साफ़ा पहनाया जा चुका था। सब ज़ोर से चीखे- जय भवानी! और तलवारें लेकर आगे निकल गए।

## चूहे, बाँसुरी वाला और सफ़ेद मोती

छुट्टन भागा। छुट्टन और भागा। वो बस भागना चाहता था। भागते हुए वो रास्ते में पड़े बड़े पत्थर, गुम्मे और अट्टे देखकर उन्हें उछलकर फ़ाँद जाता और पलट कर देखता कि कहीं कुछ फूट तो नहीं गया। वैसे ही, जैसे वो आदमी फूट पड़ा था। कुछ फूटा नहीं है, ऐसा इत्मीनान होने पर वो वापस भागता था। चूँकि यहाँ पर पिछली रात काफ़ी पथराव हुआ था इसलिए रास्ते में बहुत सारे पत्थर पड़े थे। कुछ गोल कत्थई पत्थर जले हुए सर जैसे लगते थे। छुट्टन कभी दौड़ा ज़्यादा और कभी उछला ज़्यादा। जीप की आवाज़ अब हल्की हो चुकी थी लेकिन भीड़ का शोर बढ़ चुका था।

भीड़ के आगे-आगे भाऊ साहेब की आवाज़ चलती थी। कहते हैं कि काला चश्मा लगाकर भाऊ साहेब बाघ जैसे लगते थे। उनकी आवाज़ भी बाघ की आवाज़ जैसी लगती थी। जीप आगे-आगे ऐसे चलती थी जैसे ‘बाँसुरी वाले और चूहे की कहानी’ का बाँसुरी वाला। भीड़ सम्मोहित-सी, पीछे-पीछे ऐसे चलती थी जैसे उस कहानी के चूहे। भाऊ साहेब की आवाज़ बाँसुरी की तरह थी और पिल्कुआँ पहाड़ी की तरह।

छुट्टन गिरते-दौड़ते और दौड़ते-गिरते अपने घर पहुँचा तो जैसे माँ उसका इंतज़ार ही कर रही थी। उसने बड़े दुलार से आगे बढ़कर छुट्टन को अपनी गोद में उठा लिया और उसका माथा चूम लिया। माथे पे इकट्ठी पसीने की बूँदें उसके होंठों पर लगीं तो माँ ने चिढ़ाते हुआ कहा- “छी! कितना नमकीन माथा है।” माँ आँख मटकाते हुए मुस्कुराई। छुट्टन ने कुछ नहीं कहा।

“क्या हुआ छोटा भाऊ साहेब? कहाँ से आना हो रहा है आपका?”

“.....”

“छोटा भाऊ” कहिए! रैली से आ रहे हैं क्या?”

“.....”

“क्या हुआ कुछ कहेंगे भी आप भाऊ साहेब?”

“.....”

छुट्टन ज़ोर से माँ से चिपट गया- “हम छुट्टन हैं! छोटा भाऊ नहीं। हम छुट्टन है माँ... छुट्टन। हमको छोटा भाऊ मत कहा करो।” माँ को समझ नहीं आ रहा था कि छुट्टन को क्या हुआ है। वो बस उसे ऐसे थामे हुए थी जैसे हथेली में कोई छोटा-सा मोती छुपाए बैठी हो। उसने मोती को सुरक्षित छुपा लिया था।

मोती की कोई जात नहीं होती। मोती का कोई धर्म नहीं होता। इसीलिए मोती बेशर्कीमती होता है।

## सुहागरात

मैं तमाम मर्तबा ये सोचने बैठा हूँ कि मर्द और औरत बुनियादी तौर पर एक जैसे होते हैं या फिर अलग। फ़र्ज़ करो कि मर्द और औरत की छाती एक जैसी होती। मतलब ये कि न ही औरत की छाती में उभार होता और न ही मर्द की छाती में उस उभार की अनुपस्थिति। तब क्या मर्द और औरत बुनियादी तौर पर एक जैसे नहीं होते? ऐसी स्थिति में हम कुछ बेहतर इंसान होते या फिर अभी जैसे हैं उससे कुछ कमतर इंसान होते?

मैं कई मर्तबा ये भी सोचता हूँ कि हमारे यहाँ मर्द और औरत को एक साथ रहने के लिए ज़रूरी तौर पर शादी क्यों करनी होती है? फ़र्ज़ करो कि मर्द और औरत एक साथ, एक छत के नीचे बिना शादी के ही रह सकते। ऐसे में न ही बीवियाँ अपने शौहरों से चिढ़-कुढ़ कर उन्हें ज़िंदगी भर ये ताना मारतीं कि उन्होंने फ़लाने-फ़लाने-श्रीमान 'लाख-गुना-बेहतर' सज्जन के शादी के प्रपोज़ल को ठुकराकर उनसे पल्ला बाँधा और उसके बाद भी उनके शौहर निरे निखट्टू निकले और न ही शौहर ये शिकायत किया करते कि बीवियों को खुश करने के चक्कर में उनकी कमर टूट गई और उसके बाद भी बीवियाँ उन्हें कोसा करती हैं। कुंठा भी कम होती और ज़बरन साथ रहने से उपजी फ़्रस्टेशन भी। जब तक निभी, तो निभी और उसके पश्चात दोनों प्राणी अपने-अपने रास्ते।

लेकिन फिर कुछ लोग ये दलील देंगे कि बिना शादी के मर्द और औरत का रिश्ता उतना ही कच्चा हो जाता जितना कि कपास का फाया। ज़रा-सा खिंचा नहीं कि हो गये दो हिस्से। और चूँकि इंसान अपनी फ़ितरत से ही फिसल पड़ने वाला जीव है, इसलिए उसे बाँधा जाना बहुत ज़रूरी है। लेकिन ऐसे में एक बुनियादी सवाल ये भी है कि कपास के फाये को बचाकर रखने की इतनी मशक्कत की भी क्यों जाए?

सीधे कहानी लिखने के बजाय, कुछ देर रुक कर इन सवालों की जाँच-पड़ताल मैं इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि दरअसल ये सारे सवाल ओरिज़नली मेरे नहीं हैं। ये सारे सवाल मेरी कहानी की नायिका के हैं। वो इस समय सुहागरात के बिस्तर पर बैठी, अपने पति के इंतज़ार में इन्हीं सवालों से जूझती हुई अपनी लट के छल्ले बना रही है। एक सवाल का एक छल्ला। दूसरे सवाल का दूसरा। जब उसे जवाब मिल जाता है तो वो एक लट को खोल कर सीधा कर देती है। ये आदत उसने इसलिए बना रखी है कि यदि उसे कुछ ज़रूरी सवालों के जवाब न मिलें तो देर-सबेर लट के छल्ले देखकर उसे याद रहे कि अभी भी कुछ अहम सवाल बिना उत्तर के ही उलझे पड़े हैं।

फ़िलहाल मुझे नहीं लगता कि उसकी कुछ-एक लटें कभी सुलझ पाएँगी। शायद वो भी मेरे खयाल से इत्तफ़ाक़ रखती है इसलिए उसने पहली शादी टूटने के बाद, इन सवालों को सुलझाने

में और वक़्त ज़ाया करने के बजाय, आनन-फ़ानन में दूसरी शादी भी कर डाली। और दूसरी शादी के हिसाब से आज उसकी दूसरी सुहागरात है।

‘दूसरी सुहागरात’ की बात सुनकर आप लोगों को थोड़ी-सी गुदगुदी और थोड़ी-सी हारारत तो ज़रूर महसूस हुई होगी न? ख़ासतौर पर मर्दों को। सोच रहे होंगे कि अगर आज उस लड़की की दूसरी सुहागरात है तो पहली सुहागरात भी हुई ही होगी। उसका क्या? मर्द लोग हिसाब-किताब, बहीखाता, सब क्रम से, एक-एक करके जानना चाहते हैं। मर्द इन्सिस्ट करते हैं कि कहानी को लीनियर ही रखा जाए और उसमें जहाँ पर अधिक ज़ोर देने की ज़रूरत है, वहाँ थोड़ा-सा रुककर, बात को ज़रूरी मसाले और सालन में लपेट कर समझाया-सुनाया जाए। कहानी के ज़रूरी हिस्से क़तई छोड़े न जाएँ और जब कहानी एक औरत की हो तो एक कहानीकार के लिए मर्दों को कहानी सुनाना, किसी आर्ट से कम नहीं होता। ठीक वैसे ही जैसे कि मुर्गा परोसना और मुर्गा खाना भी एक कला होती है। सबसे पहले टँगड़ी खाओ और टँगड़ी खाओ तो उसे चबाकर इस तरह से तराश दो जैसे उसमें कभी माँस था ही नहीं, बस हड्डी-हड्डी ही थी। हो सके तो मज्जा चूस कर उसे खोखला कर दो। अगर मुर्गा खाने वाले को टँगड़ी का पीस नहीं परोसा गया तो वो मुर्गा खाए बिना ही नाराज़ होकर निकल जाएगा।

इसलिए, मैं पहली और दूसरी दोनों सुहागरातों का ब्यौरा दूँगा।

मेरी कहानी की नायिका का नाम है देविका और उसके पति का नाम- राहुल। दूसरा पति। राहुल काफी सेफ़-सा नाम है न? मतलब कि न ज़्यादा फ़िल्मी और न ही ज़्यादा देहाती। आप सोच रहे होंगे कि नाम में क्या रखा है? दरअसल नाम से तमाम बार दिमाग़ में एक पूर्वाग्रह बन जाता है। प्री-बायस। और हम नाम मात्र से ही अपने दिमाग़ में तमाम सारी अटकलें और क़यास हिफ़ाज़त से बिठा लेते हैं। देविका की पहली शादी जिससे हुई थी उसका नाम सत्य प्रकाश था।

सत्य प्रकाश!

नाम से ही लगता था कि वो कोई ऐसा लड़का होगा, जो इतना मासूम निकलेगा कि जिसके लिए अभी तक की सबसे बड़ी मिस्ट्री यही बात होगी कि आखिर इस दुनिया में ये कमबख्त बच्चे कौन से रस्ते आते हैं? और जहाँ-कहीं से भी आते हैं, तो मुए सीधे सर उठा कर अपने माँ-बाप के घर कैसे चले आते हैं? किसी दूसरे के हत्थे कैसे नहीं चढ़ जाते?

सत्य प्रकाश!

नाम से ही लगता था कि वो एक ऐसा लड़का होगा जिसके लिए प्यार का मतलब फ़िल्मी गीतों में दो पीले-पीले फूलों का गुथना ही होगा, जिनके ऊपर कोई भँवरा आकर बैठ जाता है। जिसे किसी ने बताया ही नहीं होगा कि दरअसल, एकचुली में उन दो फूलों के पीछे झाड़ी में क्या हो रहा होता है। पता नहीं उसे बचपन में किसी ने वो नॉन-वेजीटेरियन जोक सुनाए भी होंगे या नहीं? पता नहीं उसने वो ‘गोली के हमजोली’ और वो ‘रबर जैसा गुब्बारा’ वाले परिवार नियोजन के विज्ञापन टी.वी. पर देखे भी होंगे या नहीं?

विज्ञापन की बात मैंने इसलिए कही क्योंकि बचपन में ये सब विज्ञापन देखना निहायत ही ज़रूरी होता है। नहीं तो क्यूरियासिटी जनरेट नहीं होती। और यदि क्यूरियासिटी जनरेट नहीं

होती तो आप उसका समाधान नहीं करते। और जब आप उसका समाधान नहीं करते तो रह जाते हैं बुद्धू-के-बुद्धू। और बुद्धू रह जाने पर सुहागरात वाले दिन बातचीत शुरू करने में बड़ी मुश्किल होती है। लड़की तो खुद से कुछ बोल नहीं सकती क्योंकि सुहागरात की सेज पर लड़की अगर शर्मीली न दिखाई दे तो उसे चरित्रहीन समझ लिया जाएगा।

ऐसी तमाम सारी बातें, अटकलें, कयास और प्री-बायस, देविका के दिमाग में इधर-से-उधर ऐसे नाच-कूद रहे रहे थे जैसे सरकारी स्कूलों में तीसरी कक्षा के बच्चे, रीसेस के दौरान कूदा-फाँदा करते हैं। वो सुहागरात वाले कमरे के बाहर शरमाई-सी खड़ी थी और सत्यप्रकाश अंदर कमरे में उसका अधीरता से इंतज़ार कर रहा था। उसने देविका के आने से पहले, अपने हाथों से बिस्तर पर केसर और गुलाब को यहाँ-वहाँ तरीके से सजा दिया था। बिस्तर की एक-एक सलवट ठीक की हुई थी ताकि जब देविका कमरे में आए तो उसे ये न लगे कि उसके इंतज़ार में वो बड़ी अधीरता से बिस्तर पर इधर-उधर लोट रहा होगा। उसने शायद सुन रखा था कि 'फ़र्स्ट इम्प्रेशन इज़ दि लास्ट इम्प्रेशन' इसलिए उसने चुपचाप रेडियो पर जगजीत सिंह की एक रोमैंटिक ग़ज़ल लगाई, वोल्यूम ज़रा-सा चढ़ाया और ग़ज़ल की गंभीरता अपने चेहरे पर लेप कर पीठ सीधी कर के तन कर बैठ गया। उसकी समझ से डीसेंट लगने के लिए यही तरीका उचित रहा होगा लेकिन मेरी समझ से वो डीसेंट कम और बाबा रामदेव का वालंटियर ज़्यादा नज़र आ रहा था।

उसके पैर की उँगलियाँ क्रसमसा रही थीं। उत्सुकता में ऐसा लग रहा था कि पैर का अंगूठा, बग़ल वाली उँगली की रीढ़ तोड़ देगा।

अचानक देविका ने कमरे में प्रवेश किया। वो ऐसे चौंक उठा जैसे किसी लौंडे को उसके वालिद ने बीड़ी पीते हुए नुक्कड़ पे पकड़ लिया हो। फिर जैसे लौंडे हाथ पर चुटकी-सुपारी मसल कर मामला संभालने की कोशिश करते हैं, वैसे ही उसने भी मामला संभालने के लिए रेडियो का कान उमेठ कर चैनल बदला। गाना बज उठा- 'तेरा पल्लू सरका जाए रे, बस तो फिर हो जाए...ई हा फ़चक...ओ हा फ़चक...' फ़िल्म का नाम था- दुल्हन हम ले जाएँगे। संगीतकार-हिमेश रेशमिया। गायक- सोनू निगम और अलका याग्निक। गीत के बोल की बेतरतीबी से बेचारा ऐसा शर्मिंदा हुआ कि रेडियो बंद करने का तरीका ही भूल बैठा। अनाड़ियों के तरीके से उसे हथेली से ऐसे थपकाने लगा जैसे आजकल रेडियो ऑफ़ करने का तरीका यही हो। रेडियो और वो साथ में ऐसे दिखाई दिए, जैसे एक रोता हुआ जिद्दी बच्चा और उसे थपथपा कर चुप कराती हुई एक खिसियाई हुई औरत। फिर अपनी ही फैलाई हुई छीछा-लेदर को समेटता हुआ, सकपकाकर बोला- "अच्छा होगा कि हम दोनों आज की रात एक-दूसरे को भली तरह जान लें।"

लाल घूँघट के भीतर से देविका ने कमज़ोर-सी आवाज़ में कहा- "जी, जैसा आप ठीक समझें।"

शायद सत्यप्रकाश का हौसला बढ़ा। वो बोला- "आप अपने बारे में कुछ बताइए न। देखिए मेरा मानना है कि पति-पत्नी तो एक ही गाड़ी के दो पहिए होते हैं, इसलिए दोनों को बिना जल्दबाजी किए हुए एक-दूसरे को भली तरह जान लेना चाहिए और अच्छी अंडरस्टैंडिंग बिठा लेनी चाहिए। दोनों के बीच में कोई राज़ या पर्दा भी नहीं होना चाहिए। इसलिए मैं चाहता हूँ कि

आज की इस खास और पहली रात पर, हम दोनों एक-दूसरे को अपनी पिछली ज़िंदगी के बारे में सब कुछ बता दें।” थूक गटकते हुए सत्यप्रकाश ने आगे कहा- “देखिए, मैं उन नैरो माइंडेड पतियों में से नहीं हूँ जो पत्नी को अपनी जागीर समझते हैं। मसलन अगर तुम्हारा कोई पुरुष मित्र, कोई ब्वाय फ्रेंड रहा हो तो...उससे तुम्हारा किसी भी हद तक कोई तालुकात रहा हो तो... तुम मुझे सब कुछ सच-सच बता सकती हो।”

देविका ने कनखियों से ऊपर देखने की कोशिश की, लेकिन घूँघट आड़े पड़ गया। अंदर से ही उसने अंदाज़े से नपा-तुला ज़ोर लगाकर ऐसे कहा कि बात घूँघट के पार बस सत्यप्रकाश तक ही जाए, उसके आगे तक न पहुँचे- “जी मतलब मेरा तो... कभी किसी से कुछ भी नहीं रहा है।” सत्यप्रकाश ने जवाब में कहा कि ऐसा कैसे हो सकता है कि उसका किसी से कुछ चक्कर न रहा हो। देविका दिल्ली की लड़की है, डेल्ही यूनिवर्सिटी से पढ़ी है। वहाँ की लड़कियाँ तो बहुत मॉड होती हैं और वो ठहरा सहारनपुर से। जब उसकी तमाम महिलाओं से दोस्ती रही है तो फिर तो ये बड़ी जायज़ और लाज़मी-सी बात है देविका की तो रही ही होगी।

फिर उसे लगा कि वो शायद शरमा रही है इसलिए इतनी जल्दी उसके सवालों का जवाब न दे सकेगी। अंडरस्टैंडिंग बिठा लेने का कार्यभार उसे ही शुरू करना पड़ेगा।

वो देविका के नज़दीक गया और उसने उसका घूँघट अपने हाथों से हटाया। वो ये देखकर हैरान था कि लड़कियाँ शादी के बाद अचानक इतनी सुंदर कैसे लगने लगती हैं। यदि आँख, कान, नाक, होंठ, गाल और माथे के सम-टोटल को ही चेहरा कहते हैं तो देविका का चेहरा, उससे कहीं ज़्यादा, अलज़ब्रा और ज्योमेट्री के बहुत सारे नियमों को धता बताता हुआ चमक रहा था। देविका की आँखें न ही मछली जैसी थीं और न तो हिरनी के जैसी। उसकी आँखें, बस आँखों जैसी थीं, जैसा आँखों को होना चाहिए, बिल्कुल वैसी। खुलें तो ऐसा प्रतीत होता था कि उनके भीतर से कोई-न-कोई झाँक रहा है। जैसा देखने वाला और जैसा देखने वाले का मन, वैसा-सा ही कोई इंसान अंदर से जवाब में झाँक उठे। प्रेमी के लिए प्रेयसी। दरोगा के लिए दरोगा। चोर के लिए चोर और तांत्रिक के लिए जादूगरनी। घूँघट उठाते ही उसने जब देविका की आँखों में उन चारों को हाथ-से-हाथ पकड़े हुए, एक पंक्ति में खड़ा पाया तो वो थोड़ा-सा सकपका गया। फिर भी सत्यप्रकाश ने अपनी सुविधा के अनुसार ये मानना पसंद किया देविका की आँखों से जवाब में बस एक प्रेयसी ही झाँक रही है। उस प्रेयसी से उसने, एक साँस में प्रेमपूर्वक कहा-

“मैं तुम्हें अपनी पहली महिला मित्र के बारे में बताता हूँ। उसका नाम था रोज़ी। वो बहुत ही शर्मीली क्रिस्म की लड़की थी। इसलिए मेरा उससे बहुत दिन तक कुछ चला नहीं। हाँ... थी वो बड़ी ही बला की खूबसूरत, देख ही लो तो करेंट-सा लग जाए। बस मैंने एक बार उसका हाथ ही पकड़ा था तो उसने मुझे एक थप्पड़ रसीद कर दिया था। बोली थी कि आई एम नॉट दैट काइंड ऑफ़ अ गर्ल। अच्छा मुझे कभी ये नहीं समझ आया कि तुम लड़कियों का ये, ‘दैट काइंड’ से क्या मतलब होता है। खैर... मैं तो थोड़ा ‘दैट काइंड’ टाइप ही लड़का था।”

सत्यप्रकाश एक शरारती बच्चे की तरह मुस्कुराया और उसने देखा कि देविका भी उसके साथ मुस्कुराई। फिर उसने हौसला पाते हुए आगे कहना जारी रखा- “जब मैं ग्यारहवीं में पहुँचा



तो मुझे उपासना पसंद आ गई। हम दोनों न, बड़े ही खेल-कूद पसंद कपल थे। मतलब हम दोनों बड़े शरारती थे। हर जगह शरारत ही करते थे। बस के अंदर, पार्क में, सिनेमा हाल में, और कभी-कभी तो...रेस्तराँ के बाथरूम में भी...अच्छा चल रहा था हमारा कि अचानक एक दिन उसे कोई और शरारती लड़का मिल गया और वो जितना शरारती था उससे कहीं ज़्यादा वो अमीर भी था। तो चैप्टर उपासना वहीं खत्म हो गया।”

एक लंबा मोनोलॉग खत्म करने के बाद उसने देविका की ओर देखा। उसकी आँखों से इस बार एक दरोगा झाँक रहा था। लेकिन सत्यप्रकाश ने फिर से सुविधा के अनुसार ये मानना पसंद किया कि देविका की आँखों से, जवाब में एक प्रेयसी ही झाँक रही है। एक प्रेयसी जिसे उसके प्रेमी पर समर्पित होना चाहिए क्योंकि प्रेमी पुल्लिंग (मेल) और प्रेयसी स्त्रीलिंग (फीमेल) होती है। प्रेमी जब अपनी प्रेयसी को किसी भी प्रकार के कन्वर्सेशन में शामिल करने के लायक समझे तो प्रेयसी को इस बात पर उसका आभारी होना चाहिए। उसने देविका के कंधे पर अपनी बाँहें कोमलता से रख दीं और दुबारा कहा कि वो नैरो माइंडेड पति नहीं है और जब उसने देविका से शादी के लिए ‘हाँ’ कहा था तो उसे पता था कि देविका भी एक ‘मॉड’ लड़की है। दोनों की प्रोग्रेसिव थिंकिंग खूब जमेगी। उसने आगे कहा-

“चैप्टर उपासना से मैं अंदर तक टूट चुका था। ऐसा लगता था कि शरीर के अंदर कहीं एक फोड़ा-सा हो गया है, अगर जल्दी ही उसका पता न चला तो अंदर-ही-अंदर वो कैंसर बन जाएगा। मैं बुरी तरह परेशान हो गया था कि तभी मेरे मामा के लड़के ने मुझे बताया कि सत्या, तेरी ईगो हर्ट हो गई है। मैंने पूछा कि ये कम्बखत ईगो क्या होती है? तो उसने कहा कि दोस्त, ये ईगो बड़ी ही जटिल क्रिस्म की, बड़ी कुत्ती चीज़ होती है। बस ये समझ लो कि यदि पुरुष की ईगो हर्ट हो गई तो उसे शांत करना बहुत ज़रूरी है, नहीं तो मर्द वैसे ही तड़पता रहता है जैसे बिच्छू के काट लेने पर एक छोटा बच्चा। मुझे तब तो उसकी बात नहीं समझ आई थी, लेकिन जब मेरा अपनी तीसरी गर्लफ्रेंड मेघा से, प्यार के सबसे आखिरी पड़ाव पर जाकर, ब्रेकअप हुआ, तो वो मेरे आगे हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाई, तब मुझे अंदर तक ठंडा-ठंडा महसूस हुआ। एक सुकून-सा। और तब मुझे समझ आया कि मेरे मामा का लड़का आखिर क्या कह रहा था। हमारे बीच वो सब कुछ हो चुका था जो एक लड़का और लड़की के बीच हो सकता है।” उसने बात को समेटते हुए आगे कहा- “उसके बाद मेरा किसी भी लड़की से कोई ताल्लुक नहीं रहा और फिर सीधे तुम मेरी ज़िंदगी में आई और यकीन मानो कि तुम मेरी ज़िंदगी में आई हो तो मैंने मन-ही-मन तुम्हें ‘पूरी तरह से’ अपनी ‘अर्धांगिनी’ मान लिया है। देविका! मैंने ईमानदारी से अपनी ज़िंदगी की पूरी किताब तुम्हारे सामने खोल कर रख दी है क्योंकि न ही मैं कायर हूँ और न ही झूठा। और अब मैं चाहूँगा कि तुम भी मुझे वो सब कुछ बता दो जो कि हमारे बीच बताने लायक हो।”

सत्यप्रकाश अपनी बात कह कर चुप हो गया। सुहागरात का सजा हुआ कमरा भी चुप हो गया। उसकी आँखों में अपराधबोध नहीं था। उसकी आँखों में कुछ भी नहीं था। उसने देविका की आँखों में देखा। चोर, दरोगा, प्रेयसी, जादूगरनी, चारों में से कोई नहीं। इस बार अपनी सुविधा के अनुसार वो ये नहीं मान सका कि उसमें से एक प्रेयसी ही झाँक रही है। इस बार उसके अंदर से खुद देविका झाँक रही थी। साफ़-साफ़ वही थी, जिसने कहा-

“आई अंडरस्टैंड। मैं एप्रीशिएट करती हूँ कि आपने मुझे इस लायक समझा और शादी की पहली रात हिम्मत और गैरत से मुझे ये सब बताना ज़रूरी समझा। इसलिए मैं भी आपको कुछ बताना ज़रूरी समझती हूँ। मैं भी बिना लाग-लपेट के सीधे मुद्दे पर आती हूँ।” सत्यप्रकाश के ‘क्या’ पूछने से पहले ही उसने आगे कहा-

“...मेरा हमारे घर के ड्राइवर से चक्कर था।”

सत्यप्रकाश ने चौंक कर पूछा- “ड्राइवर?” वो काँप रहा था। वैसे नहीं जैसे इंसान ठंड से काँपता है। वैसे जैसे कि प्रेशर कुकर की सीटी काँपती है, जिसमें चिकन की टंगड़ी पकाई जा रही हो। देविका ने बिना चौंके, दृढ़ता से कहा- “हाँ! ड्राइवर। मेरा हमारे घर के ड्राइवर से चक्कर था।”

सत्यप्रकाश ने कहना चाहा कि तुम मज़ाक कर रही हो न, लेकिन देविका के भावनाशून्य चेहरे को देखा तो उस पर साफ़-साफ़ अंग्रेज़ी फ़िल्म के सबटाइटल की तरह लिखा हुआ था- ‘आई एम डैम सीरियस...यू डेयर नॉट बेट विद मी’। इससे पहले वो ये पूछता कि तुम दोनों का किस हद तक ताल्लुकात था, देविका ने आगे कहा- “वो कभी-कभी मेरा हाथ पकड़ लेता था। बस। हम दोनों शरारती नहीं थे, तुम्हारे और उपासना की तरह। बस यूँ ही थोड़ा बहुत। आई होप यू आर ओ.के. विद इट।”

सत्यप्रकाश अचानक दूसरी तरफ़ करवट लेकर लेट गया। माहौल में इतना गहरा सन्नाटा था कि एक-एक साँस भी चुरा-चुरा कर लेनी होती थी। खटिया पर करवट लो तो वो चूँ-चूँ की आवाज़ करती थी। सत्यप्रकाश ने बाएँ करवट ली, चूँ की आवाज़ आई। देविका ने दाएँ करवट ली। एक और चूँ की आवाज़ आई। पहले वाली चूँ की आवाज़ ने, बाद वाली चूँ की आवाज़ से पूछा कि तुम्हारा एक ड्राइवर से चक्कर कैसे हो सकता है? बाद वाली चूँ की आवाज़ ने पहले वाली चूँ की आवाज़ से कहा कि बस ऐसे ही। इसके बाद बीच-बीच में एकांतर क्रम में चूँ की आवाज़ें रात भर उठती रहीं।

पहली चूँ- “ड्राइवर ने तुझे कहाँ-कहाँ छुआ था?”

दूसरी चूँ ने जवाब नहीं दिया।

पहली चूँ- “क्या तुम मुझे साफ़-साफ़ इसलिए नहीं बताना चाहती हों क्योंकि तुम्हारे बीच भी वो सब कुछ हो चुका था?”

दूसरी चूँ ने फिर जवाब नहीं दिया।

पहली चूँ- “हमारे यहाँ शादी करना आखिर इतनी बड़ी ज़रूरत क्यों है?”

पहली चूँ- “तुम एकदम रंडी हो।”

दूसरी चूँ ने जवाब देना एकदम ज़रूरी नहीं समझा।

पहली चूँ- “भगवान के लिए कुछ बोलो नहीं तो मैं तुम्हारी चुप्पी से मर जाऊँगा।”

दूसरी चूँ ने फिर जवाब नहीं दिया। क्योंकि वो उस कमरे में थी ही नहीं। वो तो उस कमरे से बाहर सड़कों तक निकल चुकी थी और रास्ते में मिलने वाला जो भी शख्स, उसे कान बंद किए हुए दिख रहा था, उसे अंदर तक भेद रही थी। लड़कियों के बापों को, मंदिर के पुजारियों को और समाज के ठेकेदारों को। जब सड़क खत्म हो गई तो वो आवेग में सड़क के पार, समय और काल की सीमाएँ लाँघने को और आगे बढ़ गई। वो चिल्लाना चाहती थी और इतनी ज़ोर से चिल्लाना चाहती थी जैसे ऑपेरा गाने वाली औरत ऑपेरा के अंत में चिल्लाती है। काँच की बोतल फोड़ देने वाली चीख।

अगली सुबह देविका सत्यप्रकाश का घर छोड़ कर चली आई।

सत्यप्रकाश ने उसे घर छोड़ने के लिए नहीं कहा था। घर छोड़ कर आना उसका निर्णय था। लेकिन घर छोड़ने से पहले सत्यप्रकाश ने उससे गिड़गिड़ाते हुए पूछा था कि वो उसे बताती क्यों नहीं कि उसका और ड्राइवर का किस हद तक चक्कर था। कोई जवाब न पाकर और अधीर होकर सत्यप्रकाश ने ये भी कहा कि तुम मज़ाक कर रही हो, एक गंदे ड्राइवर के मिट्टी सने हाथों को तुम खुद को क्यों छूने दोगी।

जवाब में देविका ने कहा- “तुम्हारे मामा के लड़के ने तुमसे ठीक ही कहा था कि ईगो बड़ी ही कुत्ती क्रिस्म की चीज़ होती है। यदि पुरुष की ईगो हर्ट हो गई तो उसे वापस से शांत कर लेना बहुत ज़रूरी होता है। नहीं तो मर्द वैसे ही तड़पता रहता है जैसे बिच्छू काट लेने पर एक छोटा बच्चा।”

“ड्राइवर ने मेरे साथ क्या किया था या क्या नहीं किया था, इसका जवाब देना मैं इसलिए ज़रूरी नहीं समझती क्योंकि एक पुरुष वही देखना चाहता है जितना देखने की औकात उसकी आँखों में होती है और वही सुनना चाहता है जितना सहन करने की सामर्थ्य उसके कानों में होती है। और हाँ! एक और ज़रूरी बात ये कि, सुहागरात पर बातें करने का आइडिया घटिया होता है। कल को जब तुम्हारी दूसरी शादी हो, तो अपनी बीवी से बातें मत करना। मेरी सलाह याद रखना, काम आएगी।”

उसके बाद देविका चली आई। उसके जाने के बाद सत्यप्रकाश को उसके अधूरे सवाल खाते रहे। जब वो खटिया पर करवट लेता था तो चूँ की आवाज़ सुन कर वो काँप जाता था। हर चूँ पर एक सवाल बुलबुले की तरह उठता था जैसे शराब में सोडा डालने पर काँच के गिलास की तली से ढेर सारे बुलबुले लाइन लगाकर ऊपर की ओर चल देते हैं। एक-दूसरे की दुम अपने हाथ में थामे हुए। वो अपनी सुविधा के अनुसार उन अधूरे सवालों के जवाब के अलग-अलग वर्ज़न तैयार कर लिया करता था। वर्ज़न 1 ये था कि देविका थी ही रंडी क्रिस्म की औरत। वर्ज़न 2 ये था कि देविका थी ही रंडी क्रिस्म की औरत। और वर्ज़न 3 भी यही था कि देविका थी ही रंडी क्रिस्म की औरत और वर्ज़न 4, 5, 6, 7 भी...डिटो।

अब आप सोच रहे होंगे कि देविका सत्यप्रकाश का घर छोड़ कर अगले ही दिन क्यों चली आई? आपमें से अधिकतर लोगों का यही खयाल होगा कि देविका इसलिए चली आई, क्योंकि उसे अच्छी तरह से पता था कि अगर वो खुद उसका घर छोड़ कर नहीं आती तो कुछ दिन बाद

खुद सत्यप्रकाश उसे घर से निकाल देगा। तमाम सारे लोग ये मानना पसंद करेंगे कि देविका की ज़िंदगी में कभी कोई ड्राइवर था ही नहीं। वो पाक-पवित्र-पतिव्रता-पूजनीय-आदर्श-भारतीय नारी थी और उसने सारी कहानी बस गुस्से में बनाई। कुछ लोगों का ये भी खयाल होगा कि देविका और सत्यप्रकाश दोनों ने अपनी बात सच-सच रखी थी। फिर, उसका घर छोड़ कर आना इस लिहाज़ से प्रैक्टिकल था कि हर रात जब वो एक-दूसरे के साथ सो रहे होते तो एक ही बिस्तर पर, संकरी-सी जगह में कुल मिला कर पाँच लोगों को सोना पड़ता- सत्यप्रकाश, ड्राइवर, रोज़ी, उपासना और उसके मामा के लड़के को। ऐसे में बड़ी सँकरई हो जाती और शायद ही कभी किसी को नींद आ पाती।

कौन-सी बात सही है और कौन-सी बात ग़लत, मैं इसका जवाब देने के पचड़े में नहीं पड़ना चाहता। मैं सिर्फ़ कहानी कहता हूँ और मैंने पहली सुहागरात की कहानी कह दी है जो कि यहीं पर ख़त्म हो जाती है। और अब हमारी कहानी की नायिका- देविका- पहली सुहागरात की कहानी से निकल कर दूसरी सुहागरात की कहानी में प्रवेश करेगी।

दूसरी सुहागरात की कहानी बहुत छोटी-सी है क्योंकि दूसरी सुहागरात के पात्र समझदार हैं, बेवकूफ़ नहीं। कहानियाँ तभी लंबी होती हैं जब उसके किरदार थोड़े से बेवकूफ़ाना हों।

‘न ज़्यादा फ़िल्मी और न ही ज़्यादा देहाती’ नाम वाले राहुल ने कमरे में प्रवेश किया। उसने देखा कि नाम में ज़्यादा माथापच्ची न करने के मूड वाली लड़की देविका पहले से ही कमरे के अंदर बैठी हुई थी। राहुल ज़ोर-ज़ोर से साँसें ले रहा था। उसकी शेरवानी लंबी-लंबी साँस लेने पर कुछ ऐसे झूल जाती थी जैसे एक बच्चे के हाथ में काग़ज़ का झंडा। उसके घुसते ही देविका ने टेबल लैप बुझा दिया और उसे अपने आगोश में भर लिया। राहुल चौंक गया। राहुल भौंचक्का था और वो कुछ कहना चाहता था...लेकिन देविका ने उसे कुछ कहने का मौक़ा नहीं दिया। उसने मुस्कुराते हुए राहुल के होंठों पर अपने होंठ रखते हुआ कहा- “सुहागरात पर बातें करना बचकाना होता है। सुहागरात जिस काम के लिए है उसे वही करते हुए बिताना चाहिए।” राहुल मुस्कुराया और उसने भी खुश होकर देविका को अपने आगोश में भर लिया।

देविका ने राहुल से कहा- “बस ज़रा... एक मिनट। मैं अपनी लटें सुलझा लूँ।” फिर झट से लट सीधी करके उसने कहा- “हम्म... अब ठीक है।”

राहुल ने पूछा- “अचानक लटें सुलझाने का क्या मतलब हुआ?”

देविका ने कहा कि तुम बातें बहुत करते हो।

राहुल फिर मुस्कुराया। मुस्कुराने से होंठ चौड़े हो जाते हैं। चौड़े होंठों से राहुल ने देविका के सूखे होंठों को कस कर चूमा। सूखे होंठों ने चौड़े होंठों का प्रतिरोध नहीं किया। ठीक उसी समय टी.वी. पर दूरदर्शन के किसी प्रोग्राम में दो फूलों को गुथना दिखाया गया लेकिन आज भँवरा कहीं नदारद था। फूलों का गुथना साफ़-साफ़ बिना सेंसर किए दिखाया गया। राहुल रात भर देविका से बातें करने की कोशिश करता रहा लेकिन देविका ने उसे बातें करने का मौक़ा नहीं दिया। देविका ने बातें करने के लिए ज़बान के बजाय बाक़ी शरीर को चुना और ज़बान को आज दूसरे काम पर लगा दिया क्योंकि तमाम बार ज़ुबान वो सब बातें कहने में असमर्थ होती है जो

चुंबन और आलिंगन आसानी से कह देते हैं। इस बारे में पूछना ही है तो आजकल के प्रेमी-प्रेमिकाओं से पूछिए, एक चुंबन उतना कुछ कह देता है जो घंटों भर की बातें नहीं कह पा रही होती हैं। चुंबन बड़े ही क़ाबिल 'मैसेंजर' होते हैं, एक जोड़ी होंठों से दूसरे जोड़े होंठों तक जाकर, वो सारी बातें कुछ इतनी शांति से खुसफुसा कर समझा आते हैं कि जिन्हें चीख कर भी समझाना आसान नहीं होता।

राहुल भी धीरे-धीरे देविका की भाषा-शैली-लहज़े में पारंगत हो गया और उसने शरीर का सारा व्याकरण समझ कर उसमें पंडिताई हासिल कर ली। राहुल उतना ही कहता था जितना सुनना देविका को अच्छा लगता होता और देविका भी उतना ही सुनती थी जितना कहना राहुल को अच्छा लगता होता। राहुल ने कभी भी देविका की पुरानी ज़िंदगी में झाँकने की कोशिश नहीं की क्योंकि देविका ने उसे झाँकने के लिए वक़्त-बेवक़्त, उससे भी बेहतर बहुत कुछ मुहैया कराया। दोनों ने एक-दूसरे को अंदर से लेकर बाहर तक इतना समझ लिया जितना इंसानों के लिए संभव नहीं होता है।

इंसान अकेला ऐसा जानवर है जिसमें नर और मादा आज तक एक-दूसरे को समझ नहीं पाए हैं, बाक़ी सभी जानवरों में नर अपनी मादा के मर्म को बेहतर जान-समझ पाया है। इंसान के अलावा दुनिया के सारे 'जानवरों' में नर मादा से ज़्यादा खूबसूरत होता है, चाहे वो नाज़ुक से पंछियों में मोर हो या फिर शक्तिशाली शेर हो, सभी अपनी मादा को लुभाने के लिए घंटों तरह-तरह का करतब और नाच दिखाते हैं और अगर उसके बाद भी मादा उनका न्यौता स्वीकार न करे तो वो चुपचाप अपने-अपने पंख-पूँछ-हरक़तें संभाल कर शालीनता से वापस चले जाते हैं।

इंसान अकेला ऐसा जानवर है जो मादा को अपनी बपौती समझता है।

राहुल ने ये ग़लती कभी नहीं की जबकि सत्यप्रकाश ग़लती से यही ग़लती कर बैठा था।

## विद्रोह

वल्लाह! ये भी क्या हसीन समय था। सारी दुनिया में क्या खूब बवाला आया हुआ था और उसके रस्ते जो भी आ रहा था, नेस्तनाबूद कर दिया जाता था। दुनिया में सिर्फ़ दो तरह के लोग थे, एक वो जो झुकाने में लगे हुए थे और दूसरे वो जो अब झुकने को क़तई तैयार नहीं थे। एक वो जो चबूतरे के ऊपर खड़े थे और दूसरे वो जो चबूतरे के नीचे से गला-फाड़, फेफड़े-फाड़ नारे लगा रहे थे- “चबूतरे से नीचे उतरो साले बुर्जुआ!” एक वो जो बंदूक की नाल की इस तरफ़ थे और दूसरे वो जो नाल की उस तरफ़ थे, लेकिन फिर भी दहाड़ दें तो साला बंदूक का बैरल गोली सहित ब्लास्ट कर जाए। फ़्रांस, रशिया, सेंट्रल यूरोप, अमरीका, चीन, भारत समेत दुनिया के कोने-कोने में क्रांति के जगन्नाथ की रथयात्रा सरपट चल निकली हुई थी। हईशा-हईशा...हईशा-हईशा।

इधर भारत में सुनने में आया कि कार्ल मार्क्स नाम के किसी वीर-बहादुर ने ‘कम्यूनिज़्म’ नाम का ऐसा शक्तिशाली ओरेंगउटांग जना है जो ‘कैपिटलिज़्म’ के बड़े-बड़े चिम्पांजियों को ऐसे हज़म कर जाता है जैसे चूरन-चटनी की फाँक भर की गोली। ‘बड़ी असरदार फिलासफी है साहब!’ ऐसा सुनने में आया। ‘रामबाण है मियाँ!’, ‘छू-काली कलकत्ते!’ पढ़कर अंग्रेज़ों पे फेंक दो तो साले दुम दबाकर रानी सहित भाग जाएँ। सब दीवाने थे। ‘कम्यूनिज़्म का ही दूसरा नाम ‘सोशलिज़्म’ है, दोनों भाई-भाई हैं’। ‘साथ खड़े हो जाएँ तो राम-लछमन लगते हैं’। ‘दो चम्मच सोशलिज़्म में गाँधी जी का ‘सत्य-अहिंसा’ आंदोलन मिला दो और अंग्रेज़ भसम हो जाएँगे।’ कुल-मिलाकर बड़ी उम्मीद और हौसले का दौर था। और इसके चलते बुर्जुआ वर्ग अपनी तशरीफ़ बचाने में मशगूल था और शोषित वर्ग उनकी तशरीफ़ के पीछे पूरे जोशो-खरोश से हाथ धोकर पड़ गया था।

गाँधी जी के पीछे-पीछे सारे भारतवासी उम्मीद भरी आँखों से टकटकी लगाए क़दमताल कर रहे थे। उन्होंने कहा कि हमारा नया मंत्र होगा- ‘नॉन कॉपरेशन’। लोग बोले- जय गाँधी महात्मा! उन्होंने कहा कि आज से कोई अंग्रेज़ों के साथ कॉपरेट नहीं करेगा। दफ़्तर में कोई काम करने नहीं जाएगा, जी-हुजूरी, चाकरी, आज़ापालन सब बंद। सबने कहा- जय गाँधी महात्मा! छोटे-छोटे बच्चे भी अपना बस्ता नालियों में फेंककर आंदोलन में शामिल हो गए। अंग्रेज़ों के लिए एडवांस में चरखे से खादी के कफ़न सिले जाने लगे। सब ठीक चल रहा था कि कुछ लोगों ने ज़्यादा जज़्बाती होकर चौरी-चौरा में पुलिस चौकी में आग लगा दी। बाईस पुलिस वाले मारे गए। गाँधी जी ने इस बात से खफ़ा होकर आंदोलन वापस लेने की घोषणा कर दी। बोले कि देशवासी अभी आज़ादी के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं हैं। ‘मैच्योर’ नहीं हैं। देशवासियों का दिल टूट गया। यहाँ तक कि बच्चों का भी। ऐसा लगा कि कांग्रेस की कोख में पलने वाला आज़ादी का शिशु, बिलबिलाते-बिलबिलाते चुप हो जाएगा। खूब मातमपुरसी हुई

लेकिन फिर नए जोश से नया एजेंडा लाने के लिए खयाली धकमपेल शुरू हो गया। और जल्दी ही नया एजेंडा आया भी। फिर से सभी लोग मोबिलाइज़ होकर चौचक तैनात हो गए।

इन सबके बीच लाहौर के एक विचार-समृद्ध इलाके में बहोत सारे, सरफ़रोशी की तमन्ना वाले नौजवानों के बीच माणिक नाम का एक नौजवान था। अजीब था, अलग था। जब उसके सारे साथी मार्क्स, लेनिन, गाँधी और चचा नेहरू का मुँह ताक रहे थे तो वो चचा ग़ालिब को टुकुर-टुकुर निहार रहा होता था। सब कहते थे ऐसे नाज़ुक समय में इश्क़बाज़ी और शेरो-शायरी हराम है। हुस्न हराम है। आज़ादी को अपनी दुल्हन बनाओ। फिर भी उसे कम्यूनिज़्म की मोटी-मोटी किताबों से ग़ालिब का एक छोटा-सा शेर ज़्यादा वज़नी और दिलचस्प जान पड़ता था। कोई कितना ही इंक़लाब को ज़िंदाबाद करे, वो बेशर्मियत से ग़ालिब के शेरों के रोमैटिक तसव्वुर का तंबू तान कर बुलंद कर देता था और उसमें चैन की बंसी बजाता था।

बड़के भैया एक अरसे से कम्यूनिज़्म का कच्चा चिट्ठा खोल कर उसकी बेदाग़ियत और पाक-साफ़गोई से माणिक को परिचित करा रहे थे लेकिन हमेशा की तरह उस पर कोई असर नहीं पड़ रहा था। बड़के भैया को आश्चर्य होता था कि ये ढीठ कैसे इतनी बे-अदबी से मार्क्स की किताबों पर ग़ालिब का शेर मूत कर चला जाता है, लगता है जैसे अपनी ज़बान की कड़ख़ी से ग़ज़लों का छौंका लगाने का मकसद सिर्फ़ बड़के भैया का कलेजा जलाना ही हो।

ख़ैर लगन तो लगन थी, इस संग लागे या उस संग। उसकी लगन एक लड़की से लग गई थी और वो कम्बख़्त थी भी ऐसी। कोई उससे लगन क्यों न लगाए, वो थी ही इतनी दिलकश कि उसके आगे सब कुछ बदसूरत था। गाँधी के सर पर बाल नहीं थे, मार्क्स के सर और चेहरे पर ज़रूरत से ज़्यादा बाल थे, और वहीं उस लड़की के सर पर एक-एक बाल जैसे खुदा ने खुद काढ़ा हो। उसके बाल घुँघराले थे और भगवान ने अपनी उँगलियों से घुमा कर उसके बालों में गोल-गोल लच्चे बना दिए थे ताकि बालों की महक उनके लच्छों में कैद हो जाए। चलो मान लिया कि मार्क्स कुछ कहता तो पूरी-की-पूरी भीड़ सोचने पर विवश हो जाती थी लेकिन जब ये मुई कुछ भी कहती थी तो पूरी-की-पूरी भीड़ सोचना ही छोड़ देती। तो क्या हुआ कि गाँधी जी के कह देने पर, सब-के-सब तश्तरियाँ उलट कर भूख हड़ताल पर बैठ जाते। माणिक भी शर्त लगाकर कह सकता था कि अगर ये मरजाणी अपने हाथ से खाना परोस देती तो अच्छे-अच्छे हड़ताली खुद अपनी उँगलियाँ चाट-चाट कर भूख हड़ताल छोड़ देते। इंक़िलाबी तो क्या भूखी तश्तरियाँ भी खुद-ब-खुद अपनी ताँबे की आँते हज़म करके व्रत तोड़ देतीं।

माणिक बड़के भैया को ऐसी तमाम दलीलें वक्रत-बे-वक्रत देता रहता था क्योंकि वह जानता था कि क्रांति के महान चढ़ावे में एक चम्मच घी की छौंक लगा सकना उसकी औकात के बाहर था। मगर हाँ! प्रेम के चढ़ावे में वो किसी भी वक्रत अपना सब कुछ दाँव पर लगा सकता था और उसके बदले 'आह' तक न कहता। बड़के भैया ने कितनी ही बार उसे अपने साथ जुलूसों में ले जाना चाहा लेकिन उसका कहना था कि वो कायर था और उसे खून और लाठियों से, डर से ज़्यादा घिन आती थी। आज फिर बहुत देर तक माणिक और बड़के भैया की बहस चली लेकिन माणिक को एक बार फिर ग़ालिब ज़्यादा हसीन मालूम हुए और वो फिर एक शेर गुनगुनाते हुए निकल पड़ा-

“मत पूछ के क्या हाल है मेरा तेरे पीछे  
तू देख के क्या रंग है तेरा मेरे आगे”

बड़के भैया ने अशफ़ाक़ को याद किया और सरफ़रोशी की तमन्ना उसके मुँह पर दे मारनी चाही लेकिन तब तक एक और जवाबी शेर उनके तमतमाए लाल गालों पर सुर्ख लाल गुलाब की तरह चिपकाया जा चुका था-

“इब्तदा-ए-इश्क है, रोता है क्या  
आगे-आगे देखिए, होता है क्या”

इश्क की ओवरडोज़ से अशफ़ाक़ जमीन पर धराशायी मिले तो बड़के भैया समझ गए कि जब किसी के कानों में इतना मैल और खूँट भरी हो, तो उसे सिर्फ़ तज़ुर्बे की दियासलाई से ही खोदा जा सकता है। और जब तक खूँट निकलेगी नहीं तब तक ऐसी कोई भी बात माणिक के कानों में घुसेगी नहीं। ये सब कोशिशें बेकार हैं।

माणिक आनन-फ़ानन पार्क आ गए। घुँघराले बालों वाली लड़की से मिलने, जिससे उनको इश्क़ लग गया था। पार्क में एक बेंच पर माणिक और लड़की बैठे थे और पार्क में आए तमाम तरह के लोगों को देख रहे थे। यहाँ ज़्यादातर लोग वही थे जो दीन-दुनिया में घट रही बातों पर चर्चा कर रहे थे। आगे भारत को क्या रणनीति अपनानी चाहिए, काँग्रेस का कब कौन अधिवेशन कहाँ होने वाला है, वहाँ चर्चा का क्या मुद्दा होगा, बाहर की दुनिया में आजकल क्या पॉलीटिकल आइडियोलॉजी चल-फिर रही है, पहले विश्व युद्ध के बाद जापान, जर्मनी और इटली में क्या नई खुस-फुस है... वगैरह-वगैरह।

माणिक ने उसके कंधे पर अपना हाथ रखा। हाथ धीरे-धीरे एक-एक इंच कर नीचे सरक रहा था। हाथ वैसे ही रेंगता था जैसे पोली मिट्टी पर एक सेहतमंद केंचुआ। एक इंच आगे तो चौथाई इंच पीछे। माणिक की उँगलियों को, पीछे की हथेली, धक्का लगाकर ठेलती थी तो लड़की ज़ोर से साँस लेती थी। ज़ोर से साँस लेने का मतलब होता था कि लड़की की छाती आग्रह करके माणिक की उँगलियों को अपने उभार की ओर पुकार रही है। माणिक हड़बड़ा तो रहे थे लेकिन लड़की की साँसों की आवाज़ से उनको हौसला मिलता था और वो बीच-बीच में, कभी अधीरता, तो कभी चालाकी से, एक इंच की जगह दो इंच का रस्ता चल देते थे। ज़रा-सी देर में कंधे से छाती तक की दूरी तय कर ली गई और उनकी हथेली ने लड़की की छाती को ऐसे भर लिया जैसे कोई छोटा बच्चा अपने दोस्तों से छिपाने के लिए मुट्ठी में चॉकलेट भर कर भींच ले।

अब लड़की की साँसों से ज़्यादा, माणिक की साँसों की आवाज़ आ रही थी। उसके आलावा पत्तों के हिलने की आवाज़। कुछ बच्चों के खेलखिलाने की आवाज़। कुछ चिड़ियों के बेरोक चहचहाने की आवाज़। दूर एक माइक पर भरभराहट भरा अनाउंसमेंट। ये सारी आवाज़ें उन दोनों का तारतम्य नहीं तोड़ पा रही थीं क्योंकि वो अपनी ही दुनिया में थे। आनंदलीन। तभी भीड़ में नेहरू-टोपियों ने ज़ोर से नारा लगाया- “इंकलाब ज़िंदाबाद! इंकलाब ज़िंदाबाद!”

लड़की ने चॉकलेट छीन ली और माणिक ने हथेली। इंकलाब सुन कर थोड़ी देर के लिए पंछी और बच्चे तो डर गए लेकिन माइक और ज़ोर से हल्ला मचाने लगा, जैसे घर में बच्चे



ज़्यादा उधम मचाएँ तो बाहर आँगन में खटिया पर बैठे बुजुर्गवार उन्हें शांत कराने के लिए पूरा दम लगाकर डाँटना शुरू हो जाते हैं। लड़की हड़बड़ा कर बेंच से उठ कर भाग खड़ी हुई। उसने दुपट्टा ठीक किया और माणिक से अलविदा कहा। माणिक ने उसे रोकना चाहा लेकिन वो सीधे घर जाकर ही रुकी। लड़की तो चली गई लेकिन उसका अड़ियल खयाल अपनी ही ज़िद में माणिक के दिमाग के दाहिने तल्ले से जाने का नाम नहीं लेता था। हार मानकर माणिक एक अंग्रेज़ी फ़िल्म का शो देखने चल दिए।

दिन और शामें फ़िल्मों, ग़ज़लों और शेरों-शायरी की किताबों में ऐसे ही बीत जाते थे लेकिन रातें नहीं बीतती थीं। लड़की ने न जाने किस वजह से पार्क आना छोड़ दिया था और उसके साथ-साथ चिड़ियों ने। हाँ! अब कौवे ज़रूर आ जाते थे और माणिक को कानी नज़र से देखते रहते थे। आखिरी मुलाकात से दो मुलाकात पहले, एक बार माणिक ने लड़की से पार्क में ही पूछा था कि क्या वो उनसे शादी करेगी? लड़की ने साफ़ कहा- “हट रे, मैं तुझसे शादी क्यों करूँगी?” माणिक हँसकर बोले- “मुझे पता है कि तुम मुझसे ही शादी करोगी।” और फिर उसके बाद धीरे से उसके कंधे पर हाथ रख दिया था। अब जब भी माणिक पार्क में बैठते तो उनको वही बात याद आती रहती। मन में तमाम तरह की आशंकाएँ होती थीं कि क्या सच में वो उनसे शादी नहीं करेगी? और क्या अब वो पार्क में कभी नहीं आएगी? पर वो ऐसा क्यों करेगी? माणिक ने याद किया कि जब भी उन्होंने उससे ये पूछा कि क्या वो उनसे प्यार करती है, तो उसने जवाब में ‘हाँ’ ही कहा था। ‘हाँ! बराबर प्यार करती हूँ’, ऐसा कहा था। उसके बाद माणिक आश्वस्त हो गए थे। बस उन्हें एक ही चीज़ कचोटती रहती थी और वो ये कि लड़की को ग़ालिब ज़रा भी पसंद नहीं थे। सोचा जाए तो ये बहोत अजीब बात थी कि इश्क़ करने वाले को ग़ालिब पसंद न हों।

ख़ैर दिन बीत रहे थे और आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा था। टोपियाँ काटी जा रही थीं और कभी-कभी टोपियों के साथ हैट भी। सड़क पर कभी-कभी कटी हुई टोपियों में सर भी फँसे मिलते थे। माणिक का पाव भर का दिल कटी हुई टोपियाँ देखकर हाँफ़ जाता था। और बड़के भैया का दिल ये देखकर हाँफ़ जाता था कि माणिक अभी भी दिलजले आशिक़ के भेस में खटिया पर औंधे मुँह पड़े रहते थे। लेकिन उनको समझाने के बजाय वो अभी भी उस समय के आने का इंतज़ार कर रहे थे जब वक़्त की दियासलाई माणिक के कान में जमा हुआ आशिक़ी का खूँट निकालेगी और उन्हें सुई के गिरने की आवाज़ चीख से भी बुलंद सुनाई देगी।

और एक दिन वो हुआ भी। माणिक के दोस्त ने उन्हें शाम को ख़बर दी कि लड़की की शादी मार्क्स के दुश्मन एक ‘बुर्जुआ’ से तय कर दी गई है और लड़की ने भी ‘हाँ’ कर दी है, क्योंकि लड़की का मानना था कि आज के समय में पूँजीवाद को तो नकारा जा सकता है लेकिन ‘पूँजीपति’ को अनदेखा नहीं किया जा सकता। उसकी शादी जिससे तय की गई थी वो भतेरे पैसे वाला इंसान था। ब्रिटिश सरकार के लोगों के साथ उसका उठना-बैठना था। वैसे देखा जाए तो बैठना कम और उठना ज़्यादा था, लेकिन ये भी क्या कम बात थी कि वो उनके घर-दुआर तक पहुँच जाता था। माणिक ऐसे बिलबिला गए जैसे किसी ने हाथ की छोटी उँगली पर बूट रख दिया हो और मुँह में अँगोछा ठूस दिया हो। छटपटाते हुए माणिक काँख में ग़ालिब की किताब खोंसे लड़की के घर तक फनफनाते हुए जा पहुँचे।

दरवाज़ा लड़की ने नहीं खोला, लड़की के भाई ने खोला। उसके बाल घुँघराले नहीं थे। इसलिए उसने माणिक के चेहरे पर स्वदेशी जूता भी जड़ा और विलायत का लेदर भी। माणिक के अंदर से पहली बार आवाज़ आई- “इंकलाब जिंदाबाद!” तेइस बरस में पहली बार उसे ऐसा लगा कि उसकी धमनियों में खून जैसा कुछ गुड़-गुड़ कर रहा है और वो अभी बाहर नहीं आया तो शिराएँ उसके भलभलाने का दबाव बर्दाश्त नहीं कर पाएँगी और इस बखत नहीं तो अगले बखत देर-सबेर ज़ोर से फ़ट पड़ेंगी। फटी हुई शिराएँ खून का फव्वारा बन जाएँगी। उसे बड़के भैया की याद आई और वो इंकलाब को जिंदा करके उसे आबाद करने के लिए आगे बढ़ा, लेकिन अबकी बार उसके माथे पर सीधे लाठीचार्ज हुआ। वैसे ही जैसे लाला लाजपतराय के माथे पर लाठी पड़ी थी। उसने इधर-उधर रो-पीट कर सबसे मदद की गुहार लगाई लेकिन इस पूँजीपति से लड़ने कोई मार्क्स नहीं आया, गाँधी तो वैसे भी अहिंसावादी थे तो उनसे मदद की आस लगाना बेमानी ही थी। माणिक ने ग़ालिब को याद किया तो पता चला कि वो तो किसी मयखाने के चक्कर लगाने में मशगूल था क्योंकि वहाँ उसे उसका नया मिसरा या शेर मिल सकता था और ग़ालिब के एक शेर की कीमत एक आम ज़िंदगी से कहीं ज़्यादा होती है।

इसी बीच हल्ला मचा कि भगत सिंह गिरफ़्तार कर लिए गए। बड़के भैया अपने साथी क्रांतिकारियों के साथ जवाबी कार्यवाही में निकल पड़े। लाठियाँ चलीं तो लाठियों का रास्ता रोकने के लिए सिर और छातियाँ आईं। चाकू खरबूजे पर गिरे और कहीं-कहीं खरबूजे खुद चाकू पर सगर्व कूद पड़े। चारों ओर से दहाड़ने की आवाज़ें भी आ रही थीं और और चीखने-पुकारने की भी। कभी दहाड़ने की आवाज़ चीखने की आवाज़ को ढक लेती थी तो कभी चीखने की आवाज़ दहाड़ने की आवाज़ को।

इधर मयखाने में अपना नया मिसरा खोज लेने के बाद माणिक मियाँ का हाल-चाल लेने साक्षात ग़ालिब झूमते हुए आए। उसकी तरफ़ पान की गिलौरी और थोड़ा-सा चूना बढ़ाया लेकिन निशाना ग़लत लग गया और ज़रा-सा चूना माणिक के ज़ख्मों पर गिर गया। माणिक तिलमिलाया, बिलबिलाया लेकिन कुछ कह नहीं सका क्योंकि वो कमज़ोर था और खून के रंग भर से उसे बड़ा डर लगता था। लेकिन उसने देखा कि ग़ालिब के गुलाब और पान के कत्थे का रंग भी वही था। गाढ़ा-लाल-भूरा रंग। उसके जी में आया कि वो भी कुछ ऐसा कर दिखाए कि साले इश्क़ को गाली देने वाले और उसे कमज़ोर कहने वालों का कलेजा सिकुड़ कर पुड़िया हो जाए लेकिन तब तक उसके सर पर एक और लाठी पड़ गई।

उधर बड़के भैया भी अंग्रेज़ों की एक लाठी का कोप भाजन बन गए और मौक़े पर ही मार्क्स की गोद में सो गए। वहाँ गाँधी ने खुद अपनी सफ़ेद धोती बेचारे शहीद को ओढ़ाई थी और यहाँ ग़ालिब सिर्फ़ पान चबाने में मशगूल थे। माणिक ने मीर का मुँह ताका तो उसने कहा कि ‘उसे पहले मीर के पास आना चाहिए था, तुम साले ग़ालिब के पास क्यों गए?’ और वो भी तब जब मीर की ग़ालिब से ठनाठनी तनी हुई थी। मीर ने कहा-

“रेख़्ता के तुम ही उस्ताद नहीं हो ‘ग़ालिब’  
कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था”

हताश होकर जब माणिक घर आया तो निराशा और गुस्से की चपेट में वो चिढ़कर अमिया

काटने की दराती उठा चुका था। काठ के पटे और और दराती के बीच में उसकी कलाई थी।

एक प्रेम कहानी का इससे सस्ता अंत नहीं हो सकता था।

जब आखिरी बार माणिक ने लाचारी से ग़ालिब की तरफ़ देखा तो ग़ालिब ने कहा कि 'मैं तो खुद ही लाचार हूँ मियाँ! माना कि तुमने सारी ज़िंदगी मेरे लिखे में अपना कलेजा लगा दिया लेकिन मैं खुद भी तुमसे ज़्यादा बेबस इंसान हूँ। बीवी से मेरी पटती नहीं है और मेरे सात बेटों में से कोई भी जवानी की दहलीज़ को छू कर नहीं आ पाया। बस शेरों-शायरी ही कर सकता हूँ। ऐसे लाचार इंसान से किसी मदद की उम्मीद करना तुम्हारी तरफ़ से ग़ोया बे-ईमानी ही तो है।' झटके भर में मीर भी ग़ायब हो गए और ग़ालिब भी।

माणिक दराती से अपनी नस काटने ही वाले थे कि इसी बीच बड़के भैया के शहीद होने की खबर तेज क़दमों से घर पहुँच गई। खबर ने माणिक को अंदर तक झिंझोड़ दिया। एकबारगी खयाल आया कि आत्महत्या कर ही लेता हूँ लेकिन फिर सहसा एक और डरावना खयाल आया- 'कल को बड़के भैया के शहीद होने की खबर राष्ट्रीय अख़बार ट्रिब्यून में छपी जाएगी और वहीं किसी सस्ती लोकल मैगज़ीन में माणिक की कहानी छपी मिलेगी। चटपटी कहानी का मसालेदार शीर्षक होगा 'कच्ची कलियाँ-ज़ालिम माली- प्रेम में नाकाम एक शोहदे ने दराती से नस काटकर खुदकुशी कर ली, खून से सनी लड़के की लाश मिली। लड़के के शरीर पर एक खून सनी तहमत और आधी बाँह की बनियान थी। पड़ोस वालों का कहना है कि कुछ समय से लड़के की दिमागी हालत कुछ ठीक नहीं थी। वो इस बात से दुखी था कि लड़के की महबूबा ने उसे लात मारकर एक व्यापारी से शादी कर ली।'

माणिक ने हाँफते हुए राष्ट्रीय समाचार पत्र ट्रिब्यून से लोकल मैगज़ीन का गला दबा कर उसकी साँसे घोंट दी और लोकल मैगज़ीन में छपने वाली अपनी फ़ोटो, छपने से पहले निकाल कर फाड़ फेंकी। अगली सुबह माणिक ने लड़की को खत लिखा और एक लिफ़ाफ़े में ट्रिब्यून के उस पेज के साथ लड़की को भेज दिया जिसमें बड़के भैया के शहीद होने की खबर छपी थी। खत में सिर्फ़ एक शेर लिखा गया था जो ग़ालिब ने कहा था-

“अशक़ आँखों में कब नहीं था

लहू आता है जब नहीं था”

और शेर के नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में अंडरलाइन कर के लिखा हुआ था-

‘विद्रोह’

## बाजरे का रोटला, टट्टी और गन्ने की ठूँठ

### पतली टट्टी, मोटी टट्टी, लंबी-छोटी-चौड़ी टट्टी

दो लौंडे हगने में लगे थे। हगना उनके लिए किसी खेल से कम नहीं था। बचपन में खेलना बहुत ज़रूरी होता है और खेल-खेल में हगना भी। उन दोनों के लिए 'टट्टी' उनके रोज़मर्रा की तमाम सारी बातों का हिस्सा बन गई थी। टट्टी घूम-फिर कर उनके तमाम चुटकुलों में कहीं-न-कहीं से आ ही जाती थी। टट्टी उनकी कविताओं में भी घुस गई थी, वो अक्सर गुनगुनाते रहते थे-

“टट्टी मेरी प्यारी टट्टी, सारे जग से न्यारी टट्टी  
जब भी तू ना आवे टट्टी, सच्ची बड़ा सतावे टट्टी  
काली टट्टी, पीली टट्टी, शौचालय की रानी टट्टी  
खुल के जब भी आवे टट्टी, मन-आँगन हरसावे टट्टी।”

अब ये कविता उन्होंने कहाँ से सुनी थी, इसका पता लगाना मुश्किल था। इस तरह की कविता कहाँ से शुरू हुई होगी, पहले-पहल उसे किसने लिखा होगा या वो किसके दिमाग की उपज थी; क्या मालूम! ऐसी तमाम सारी बातें बस बच्चों के बीच से होकर गुज़रती रहती हैं, एक बच्चे से दूसरा बच्चा, और दूसरे से तीसरा। बचपन में हरेक बात पर हँसी निकल जाती है। बग़ल वाले ने हँस दिया, हँसी निकल गई, बग़ल वाले ने पाद दिया, हँसी निकल गई, बग़ल वाले ने टट्टी का ज़िक्र छोड़ा, हँसी निकल गई। कुल-मिलाकर बचपन मज़ेदार होता है क्योंकि उस वक़्त कुछ भी कहने-बोलने-करने पर ये खयाल नहीं आता कि कोई किसी इमैज़िनरी कोने से झाँक कर हमारी हरकत को देखकर क्या कहेगा!

इसी बे-खयाली और बे-अदबी में मगन, वो दोनों लौंडे हगने में लगे थे। करिया लौंडा। सूखा लौंडा। सूखा लौंडा हमेशा इस बात से दुखी रहता था कि उसको हमेशा पतली टट्टी आती थी और करिया लौंडे को मोटी। दुख से ज़्यादा ये उसके लिए शर्मिंदगी की बात थी और शर्मिंदगी से ज़्यादा हैरानी की।

“अबे तेरी टट्टी मेरी टट्टी से मोटी क्यों है?” सूखे लौंडे ने मुर्गा बनते हुए, अपने दोनों घुटनों के बीच झाँक कर देखते हुए करिया लौंडे से पूछा।

उसकी मुद्रा को देखकर समझ नहीं आता था कि वो ये सवाल करिया लौंडे से पूछ रहा था या अपनी गाँड़ से। करिया लौंडे ने उसकी बात को अनसुना कर दिया।

“अबे बोल ना, प्लीज।”

“कल क्या खाया था?” करिया लौंडे ने चौड़ाते हुए पूछा।

“दाल पी थी।” सूखे लौंडे ने सिकुड़ते हुए जवाब दिया। “और तूने?”

“बाजरे का रोटला, समझा?”

“नहीं।”

“अबे साले मूरख है क्या?”

“अबे गाली मत दे, मैं बोल रहा हूँ।”

“क्या गाली दी बे?”

“अच्छा, साला नहीं बोला तूने?”

“साले कौन-सी गाली होती है बे?”

“होती है। ‘साले’ बिलकुल गाली होती है। मैं सीटू से पुछवा दूँगा।”

“सीटू भी सिरि है और तू भी सिरि है”। करिया लौंडे ने बात को काट कर खत्म कर दिया।

“अच्छा!”

बात खत्म होने से सवाल खत्म नहीं हुआ। सूखे लौंडे से रहा नहीं जा रहा था। हगते हुए वो ज़मीन पर उँगली से साँप बनाता था और फिर पानी डाल कर उसको खत्म कर देता था। साँप कभी-कभी सवाल के निशान जैसा लगता था। प्रश्नवाचक। क्वेश्चन मार्क।

“अबे बता न, तेरी टट्टी मेरी टट्टी से मोटी क्यों है?”

करिया लौंडा शुरुआत से ही कटे हुए गन्ने की एक बची हुई ठूँठ उखाड़ने की कोशिश कर रहा था। ठूँठ बाहर नहीं आ रही थी, वो जब भी ज़्यादा ज़ोर लगाता, तो ठूँठ की जगह धक्के से टट्टी निकल जाती थी। सूखे लौंडे से गन्ना नहीं उखड़ता था इसलिए वो दूसरे काम में मगन था। दोनों अपनी टाँगों पे उकड़ू बैठ के ये देख रहे थे कि टट्टी ज़मीन पर गिरने से पहले कितनी लंबी हो जाती है।

“अबे देख...अबे साले जल्दी देख ना...ए बे देख...” सूखे लौंडे ने खुशी से लगभग चीखते हुए कहा। यूरेका-यूरेका की तरह।

“क्या?”

“साली साँप के बराबर हो गयी थी।”

“हुँह...मेरी एक दिन आधा-हाथ लंबी हो गयी थी।”

“अबे मेरी और बड़ी हुई थी, काले साँप के बराबर।”

“कौन-सा साँप?”

“अबे काला साँप, वो जो दिलावर के दुआरे निकला था परसों।”

“चल, झूठा साला।”

सूखा लौंडा दुखी हो गया। दुखी होते हुए बोला-

“अबे तू देखता नहीं है। मैं इसीलिए बोला था कि देख। तू पहले देखता नहीं है फिर मैं कहता हूँ तो मानता नहीं है...सच्ची...साँप के जितनी लंबी हो गई थी...पूरी एक हाथ लंबी...माँ क़सम!”

“चल साले।”

“मादरचोद!”

## दिलावर के दुआरे साँप, पेटीकोट और सीटू का विधवा-विलाप

टोले में साँप निकलना कोई नई बात नहीं थी। साँप कभी भी निकल आता था और कहीं भी निकल आता था। रात-बे-रात, दुआरे पे, अरगनी पे, धन्नी पे, अटारी पे, खटिया के नीचे या पनारे पे। उस दिन जब दिलावर के दुआरे साँप निकला तो ये भी कोई बड़ी भारी बात नहीं थी। साँप के काटने से जब माधो मरा था तो भी कोई बड़ी भारी बात नहीं हुई थी। माधो की घरवाली का चौदह दिन बाद ब्याह करवा दिया गया था और अब वो मदनपुर में अपने ससुराल चली गयी थी।

दिलावर के दुआरे जब साँप निकला तो सीटू उसके दरवाज़े पर गर्दन फाड़-फाड़ के हल्ला मचा रहा था-

“हो हू-हू-हू हुस-हुस-हुस हुर्-रर--रर-हुर्।”

“हो-हू-हू-हू-हुस हुस हुस-हुर्-रर--रर-हुर्।”

दिलावर बाहर आया तो उसका मुँह ऐसा तमतमाता था जैसे सुलगता हुआ कोयला फूँक मारे जाने पर चिटकता है। उसके गले में जान अटकी हुई थी। जान न निगलते बन रही थी न उगलते। सीटू चीख-चीख कर उसकी अटकी हुई जान को ऐसे निकाल रहा था जैसे कुएँ से पानी खींचा जा रहा हो।

“का रे बनच्चर, काहे हल्ला मचाता है। चुप हो जा।”

“हो-हू-हू-हू हुस-हुस-हुस हुर्-रर--रर-हुर्।”

“बानर की औलाद, चुप हो जा नहीं तो मुँह तोड़ देंगे हम।”

“हो।”

“अबे साले भाग, बानर-जात।”

सीटू सरपट भागा। साँप भी सरपट भागा और भाग कर दिलावर के घर के अंदर घुस गया। साँप इधर से उधर सरसरा कर सरक रहा था। साँप के अचानक अंदर घुस जाने से, अंदर से निकलकर, कोई बाहर की तरफ़ भागा। अँधेरे में साफ़ नहीं दिख रहा था, न जाने कौन-सा जंतु था।

“मानुस था शायद, हाँ मानुस ही था।”

“नहीं औरत थी, हम्म...औरत नहीं थी।”

“हाँ! औरत ही थी।”

वो जल्दी में धोती लपेट के भागी थी और जब वो जल्दबाजी में सब कुछ बटोर के भागी थी तो दुआरे उसका पेटीकोट गिर गया था। दिलावर ने सीटू का सारा गुस्सा करिया साँप पे निकाल दिया और उसका फन ऐसा कुचला कि वो ‘फूँ’ भी नहीं कर पाया। साँप ऐसे मरा जैसे उस दिन सूखे लौंडे ने टट्टी के वक्रत मिट्टी पर पानी डाल कर उसे मार डाला था।

अब जाकर सीटू को समझ में आया कि दिलावर इतना क्यों तमतमा रहा था और उसके गले में किसका पेटीकोट अटका हुआ था। वो खुशी से लोट-पोट होते हुए उछलते-कूदते भाग निकला। इधर, दिलावर को नींद नहीं आ रही थी। जब वो खटिया पर पेटीकोट बिछा कर लेटा और काफ़ी देर तक उसके नाड़े और अस्तर से खेलता रहा, तब जाकर उसे नींद आई।

## **सूखा लौंडा, ट्रैक्टर, हवाई चप्पल, सोटा और महतारी**

सूखा लौंडा अपनी अम्मा के चारों ओर गोल-गोल टहल रहा था-

“अम्मा खाना दे।”

“खा ले जा के अरगनी पे बटोई में रखा है।” अम्मा ने कहा।

“दाल है ये तो।”

“हाँ! तो क्या खोआ-पनीर खाएगा लाट-साहब!”

“मैं दाल नहीं खाऊँगा। दाल खाने से टट्टी पतली आती है, फिर भँवर मुझको चिढ़ाता है। सीटू को भी मोटी टट्टी आती है।”

“सोंटे से मारूँगी दलिद्वर कहीं का। खाना है तो खा नहीं तो पड़ा रह पेट में गीला गमछा बाँध के। भूख कम लगेगी।”

“नहीं खाऊँगा।”

“मैं बता रही हूँ खा ले बनच्चर, नहीं तो सोंटा बजेगा आज।”

सूखे लौंडे ने खाना नहीं खाया। महतारी घर का काम करती रही। लौंडा मिट्टी का ट्रैक्टर सारे घर में घुमा रहा था। उसने कूड़े से एक जोड़ी टूटी हवाई चप्पल निकाल ली थी और उसमें छेद कर के उसने रबड़ के चार पहिए भी निकाल लिए थे। रबड़ के पहिए वाला, मिट्टी का ये ट्रैक्टर, थोड़ी देर के लिए, उसका दिमाग़ खाने से निकाल कर उधम में घुसेड़ देता था, लेकिन यहाँ-वहाँ थोड़ी देर नाच-कूद लेने के बाद उसको फिर खाने की याद आ जाती थी।

“मुझे खाना दो, भूख लगी है।”

“कहा न मैंने कि आज बस दाल ही बनी है। चुपचाप जाकर दाल पी ले।”

लौंडा समझ गया कि उसे दाल के अलावा कुछ और जुगाड़ नहीं मिलने वाला है, इसलिए वो फिर से ट्रैक्टर टहलाने लगा। “पीं..पीं...हटो हटो...ट्रैक्टर आया ट्रैक्टर। जिस सवारी को उतरना है वो जल्दी उतरिए...पीं...पीं..।” सवारी उतार कर वो फिर से अम्मा के बगल में आ कर खड़ा हो गया, सोचने लगा कि क्या तिकड़म भिड़ाए कि जुगाड़ बन जाए उसका। एक हाथ से नाक और दूसरे हाथ से काँख खुजाता रहा। थोड़ी देर बाद बोला-

“हम देख लिए हैं अम्मा, तुम हमको प्यार नहीं करती हो। भँवर की अम्मा उसके लिए बाजरे का जे-मोटा-मोटा रोटला बनाती है।” उसने दोनों हाथों से मोटाई का एक अंदाज़ा दिखाते हुए कहा। दोनों हाथों के बीच में कम-से-कम चार अंगुल की जगह रही होगी। “लेकिन तुमको फिकर काहे होए हमारी। कल रात में भी तुम कहाँ चली गई थी? इतना पेट दरद कर रहा था हमारा और तुम घर में थी ही नहीं।”

‘कल रात में तुम कहाँ थी’ वाली बात पर महतारी को अचानक से गुस्सा आ गया और उसने कपड़े धोने का पट्टा लौंडे को फेंक कर मारा। पट्टा लौंडे के सर पर जा लगा और उसका सर फट गया। महतारी ऐसा करना नहीं चाहती थी। उसका दिल पसीज गया और वो भागती हुई तेल के दिए की ढिबरी उठा लाई लेकिन उसमें तेल नहीं बचा था। उसने गीला कपड़ा उसके माथे पर रखते हुए कहा-

“हम कहीं नहीं गए थे, रात में घर पर ही थे बाबू। अच्छा! खाना खा ले।”

लौंडा कुछ नहीं बोला।

“हम सच कह रहे हैं हम घर पर ही थे। बस तनिक देर को आटा और गुड़ जुगाड़ने बाहर गए थे, सोचे थे आज तुम्हारे लिए पुआ बनाएँगे।”

“सच कह रहे हैं। जुगाड़ ही लाते बाबू, लेकिन बात नहीं बन पाई।”

लौंडा फिर से कुछ नहीं बोला। उसे पता था अम्मा ऐसे ही कहती रहती है। जब तक लौंडे का बाप ज़िंदा था तब तक तो गाहे-बगाहे कुछ-न-कुछ अच्छा खाने को मिल ही जाया करता था, लेकिन अब उसके भाग में बस दाल पीना ही लिखा है। वो माथा पकड़ कर सो गया।

## रानी, चूतिया, असर्फियाँ और जोगीरा सारा-रा-रा

“उस दिन बीच में से काहे भागी थी तू? हम क्रसम बता रहे हैं काट डालेंगे। बोले थे न कि हिलना मत। हम देख के आ रहे थे न कि कौन चिल्ला रहा है दुआरे, तो हिली काहे तू? अब माँ क्रसम हँसिया से काट डालेंगे हम तुमको। नाड़े का गाँठ भी न खोला गया और तुम भाग गई।”

“साँप आ के घुस रहा था धोती में, मूरख मानुस। भागते नहीं का हम। ऐसे चिल्लाता काहे है?”

“साँप घुस रहा था तो घुस जाने देती। हम बोले थे न कि हिलना नहीं।”



दिलावर रूठने की कोशिश कर रहा था और वो मनाने की। दिलावर मानता नहीं था और उसको समझ नहीं आता था कि दिलावर को मनाया कैसे जाए।

“अच्छा गुस्सा ना हो, आज हम तेरे लिए वो कर देंगे।”

“क्या कर देगी रे?” दिलावर ने थोड़ा-सा और रूठते हुए पूछा।

“जोगीरा सारा-रा-रा...” औरत ने कम शरमाते हुए और ज़्यादा डरते हुए कहा। उसे लग रहा था कि कहीं उसने बदले में ज़्यादा बड़ा-भारी वादा तो नहीं कर दिया। दिलावर की आँखें चमक गईं, उसको उम्मीद नहीं थी कि औरत अचानक से इतना कच्चा सौदा करेगी। वो उछल के खटिया पे जा बैठा और उकड़ू बैठ के उसको घूरने लगा।

“मैं तुझे रानी बना दूँगा एक दिन... सच कहता हूँ।”

“चल साले झूठे। उस रात खाली किलो भर आटा और गुड़ देने के लिए कहा था तो इतना मान-मनौव्वल और टालमटोल करता रहा।”

“झूठ बोलूँ तो मेरी कखरी में खाज हो जाए और मैं खुजा-खुजा के मर जाऊँ। मैं सच कहता हूँ तुझे रानी बना दूँगा एक दिन।”

“क्यों, आजकल तेरी गाय गोबर के बजाय असरफ़ियाँ हगने लगी है?”

“हाँ! यही समझ ले मेरी रानी...बस तू शुरू कर।”

“देख दिलावर आज हम वो कर तो देंगे तोहरे लिए, लेकिन हमारी सरत है कि तू हमको अब और चूतिया नहीं बनाएगा। ये रोज-रोज हम से पेटीकोट संभाल-संभाल के आइस-पाइस नहीं हो पाएगी, कहे दे रहे हैं।”

“अरे जो चाहिए उठा ले जा, पूरा घर और पूरी कोठरी पड़ी है तेरे लिए...तू बस चालू हो जा।”

दिलावर अधीर हुआ जा रहा था।

“हमको चूतिया बनाने की कोसिस मत करना, हम एक बार फिर से कहे दे रहे हैं।”

“हाँ! कह दिए ना, अब जादा मान मत कराओ नहीं तो साली बचोगी नहीं हमसे। बताए दे रहे हैं।”

“जोगीरा सारा-रा-रा...”

“जोगीरा सारा-रा-रा...”

दिलावर गाना गाता था और वो नाचती जाती थी। उस दिन वो बहुत नाची और उस दिन के बाद अक्सर जब भी दिलावर ‘जोगीरा सारा-रा-रा’ गाता था तो वो उसके मन का ठुमका लगा दिया करती थी।

“इसको खोल ना।”

...

“और ये।”

....

“ये ले।”

“जोगीरा सारा-रा-रा...”

“जोगीरा सारा-रा-रा...”

## करिया लौंडा, सूखा लौंडा और गुड़ का पुआ

आज फिर दोनों लौंडे साथ बैठ कर हग रहे थे और पिछले दिनों की सारी दुनियादारी की चर्चा चल रही थी। सूखा लौंडा आज सूखा नहीं नज़र आ रहा था और करिया लौंडा थोड़ा कम मोटा नज़र आ रहा था। बल्कि रोज़ की कहानी के विपरीत आज सूखे लौंडे के चेहरे पर चमक थी और उसकी आवाज़ में हनक भी। उसकी टट्टी को देखकर आज पहली बार काले लौंडे की साँस अटकी हुई थी। वो एकदम भौंचक्का होकर बोला-

“अबे कल क्या खाया था तूने, अबे बता ना साले।”

“गाली मत दिया कर।”

“अबे, ‘साले’ गाली नहीं होती है कितनी बार बताया है। अच्छा वो सब छोड़...बता ना कल क्या खाया था तूने? दाल तो नहीं खाई होगी और बाजरे का रोटला भी नहीं। साले आजकल... आजकल तेरी टट्टी देख के लगता है कि बहुत मालपुआ दबा रहा है....अबे बता ना...?”

“हाँ गुड़ खाया था और पुए खाए थे। बाजरा मुझे गले से नहीं उतरता है। मैं आजकल बस पुआ खाता हूँ।”

“चल साले, मैं नहीं मानता।”

“मत मान, मैं कब बोल रहा हूँ मानने के लिए।”

“अबे नहीं यार, मैं मान रहा हूँ। आजकल तू रोज मालपुआ खा रहा है। मैं टट्टी देख के बता सकता हूँ, इतना तो जानता हूँ।”

मोटा लौंडा उँगली से जमीन पर साँप बना रहा था लेकिन उसका जी नहीं लग रहा था आज। उसका दिमाग तो बस पुए में ही अटका हुआ था।

“मेरे लिए भी माल पुआ लाएगा एक दिन?”

“देखूँगा।”

“ले आना भाई, मैं गाली नहीं दूँगा तुझे फिर कभी। साले भी नहीं बोलूँगा। सच्ची! माँ

क्रसम!"

"देखूँगा।"

"देख भाई मेरी अम्मा तो मुझे प्यार करती नहीं है। तेरी अम्मा तो तुझे कितना प्यार करती है। ले आना ना भाई।"

"नहीं, मेरी अम्मा मुझे प्यार नहीं करती है। वो किसी से प्यार नहीं करती। वो दिलावर पे भी चिल्लाती है। बापू के मरने के अगली रोज जब दिलावर उसके लिए चूड़ियाँ लाया था तो उसने दिलावर से भी कहा था कि पट्टा फेंक कर मारेगी उसे और एक दिन उसने मुझे भी पट्टा फेंक के मार दिया था। सर फट गया था मेरा, ये देख निसान।"

"अबे हॉ बे, गहरा निसान है।"

"अबे पागल है क्या, टट्टी के हाथ से क्यों छू रहा है, बेवकूफ है क्या एकदम?"

"सौरी बे सौरी"

"मादरचोद, टट्टी के हाथ से चोट छू दिया।"

हवा बदल चुकी थी। सूखा लौंडा आज अचानक से करिया लौंडे पर भारी पड़ चुका था। मोटी टट्टी आज उसकी बढ़ी हुई शान और धाक का एक माध्यम बन चुकी थी। कितने अरसे बाद, पहली बार, वो इतनी इज़्ज़त के साथ हगने में मशगूल था। वो लगातार करिया लौंडे को अनसुना कर रहा था और अनदेखा भी। वो सर नीचे झुकाकर सुकून से घुटनों के बीचों-बीच निहार रहा था। बचपन के खेल, कितने अजीब होते हैं न?

करिया लौंडा अचानक से चौंका और चिल्लाया-

"अबे!"

"अबे!"

"अबे देख ना साले।"

सूखे लौंडे ने एक बार फिर उसकी तरफ नहीं देखा। वो अभी भी वहीं झाँक रहा था। निराश होकर करिया लौंडे ने आगे कहा-

"क्या यार, देखना था ना...कितनी लंबी हो गई थी।"

"ठीक है बेटा, बन ले हीरो। आज बहोत हीरो बन रहा है तू साले, दिन-दिन की बात है। कभी मुझे भी मालपुआ खाने को मिलेगा। तब बताऊँगा। मैं भी अपनी अम्मा को बोलूँगा मालपुआ खिलाने को..."